सामाजिक-साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विचारों का मासिक

प्राची

वर्ष : 5 अंक : 12, पूर्णांक : 60

मईः 2015

सहयोग राशि (1 प्रति)	:	₹ 20
वार्षिक	:	₹ 220
द्वैवार्षिक	:	₹ 420
त्रैवार्षिक	:	₹ 600
आजीवन	:	₹ 2500
संरक्षक सदस्य	:	₹ 5000
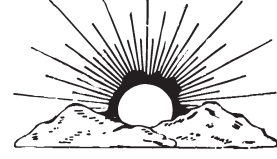
सहायक संपादिका
डॉ. भावना शुक्ल

प्रकाशक
श्रीमती किरन वर्मा

संपादन-संचालन
पूर्णतया अवैतनिक, अव्यावसायिक

संपादक
राकेश भ्रमर
मो. 09968020930
Email: rakeshbhramar@rediffmail.com

संपादकीय पता	मुख्य कार्यालय
प्राची मासिक	**प्रज्ञा प्रकाशन**
7, श्री होम्स, कंचन विहार,	24, जगदीशपुरम
बचपन स्कूल के पास,	लखनऊ मार्ग,
लामटी, विजय नगर	निकट त्रिपुला चौराहा,
जबलपुर-482002 (म.प्र.)	रायबरेली-229001(उ.प्र.)
मोबाइलः 09425323193	मो. 09889603632

Email:- prakashanpragya@gmail.com
prachimasik@gmail.com

विषय क्रम

विविधा, लेख व अन्य

कहानियां-उपन्यास एवं व्यंग्य

काव्य जगत

लघु रचनाएं

प्राची

वर्ष : 5 अंक : 12, पूर्णांक : 60

मईः 2014

❄ प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता की पूर्ण जिम्मेदारी लेखक की होगी.

❄ लेखक के विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है.

❄ किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र जबलपुर होगा.

❄ प्रकाशित सामग्री पर पाठकों की प्रतिक्रिया 'आपने कहा है...' पृष्ठ पर प्रकाशित की जायगी.

❄ आपके विचारों का स्वागत है.

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक श्रीमती किरन वर्मा एवं श्री अमरेन्द्र सिंह, मुद्रक द्वारा प्रज्ञा प्रकाशन के लिये ग्रेनेडियर्स प्रिटिंग प्रेस, कैन्ट, जबलपुर (म.प्र.) से मुद्रित तथा 7, श्री होम्स, कंचन विहार, बचपन स्कूल के पास, लामटी, विजय नगर, जबलपुर-482002 (म.प्र.) से प्रकाशित

वीआई पी संस्कृति

संपादक जी! एक दिन मैं अपने मित्र की मोटर साइकिल पर बैठकर शहर की ओर जा रहा था कि अचानक पुलिस की गाड़ी हूटर बजाती हुई रोड पर आई. उसमें से चार-पांच पुलिस वाले उतरे और डंडा पटक-पटक कर सबको रोड छोड़ कर साइड में खड़े होने को कहने लगे. वर्दी का रौब ही इतना होता है कि झटपट रास्ता साफ हो गया. मैं कुछ पूछता इसके पूर्व मित्र ने कहा- लगता है कोई वीआइपी आ रहा है, जिसके लिए रास्ता साफ कराया जा रहा है. थोड़ी ही देर में आने-जाने वाले लोग अपनी गाड़ियां रोक कर बिलकुल किनारे खड़े हो गए. कई लोग सामान लादे खड़े थे. कोई बीमार बच्चे को अस्पताल ले जा रहा था. कोई परिवार बैठाकर किसी आवश्यक कार्य से या सामान की खरीदारी करने के उद्देश्य से जा रहा था. कुल मिलाकर सभी लोग आवश्यक कार्यों से ही जा रहे थे, किंतु उन्हें रोक दिया गया था. थोड़ी देर बाद नीली और लाल बत्ती की चमचमाती दर्जनों गाड़ियां साइरन बजाती हुई आती दिखाई दीं. ऐसा लग रहा था कि सड़क और पुलिस सब केवल और केवल उन्हीं के लिए हैं. आम आदमी तो सड़क पर जैसे जबरन चलता है, तभी तो जब चाहे उसका आना जाना रोक दिया जाता है और बत्ती वालों के लिए रास्ता बनाया जाता है.

कहने को भले इन्हें लोकतंत्र का रक्षक या जनता का सेवक कहा जाय लेकिन इनके अंदर का भाव ऐसा कतई नहीं है. अब डॉ राजेन्द्र प्रसाद, राधाकृष्णन, लालबहादुर शास्त्री और जय प्रकाश नारायण जैसे सेवाभाव रखने वाले नेताओं का सर्वथा अभाव है. उनके आदर्श पुराने डिब्बों में बंदकर रख दिए गए हैं, कभी-कभी भाषण देने के काम जरूर आ जाते हैं. आज अधिकांश नेता सर्वसमर्थ हैं, दबंग हैं, वीआइपी हैं और शासक हैं. इन सबसे बढ़कर सुविधाभोगी हैं. आज राजनीति सेवा नहीं व्यवसाय है. इसमें आने वाली पीढ़ियों, पुत्रों, बहुओं का भी भविष्य सुरक्षित करने की परंपरा विकसित हो रही है. नेता का बेटा फौज में चला जाएगा तो उसके वंश का अपमान हो जाएगा, ऐसी सोच व्याप्त हो चुकी है. आप भी बेखबर नहीं होंगे कि आए दिन कुछ विधायकों के बेटे या भाई-भतीजे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते रहते हैं. मारना-पीटना या किसी को प्रताड़ित करना तो इनके लिए चाय पीने-पिलाने जैसी घटना है. क्या यह मानवता पर कलंक नहीं है कि यदि कोई गाड़ीवाला पास न दे तो उसे गोली मार दी जाय. यदि कोई ओवरटेक कर आगे निकल जाए तो उसको जान से मार दिया जाय. अपने को वीआइपी और दबंग सिद्ध करने के चक्कर में ये सब कार्य किए जा रहे हैं. इन्हें रोकने वाला कोई नहीं है, इन्हें किसी का डर भी नहीं है.

संपादक जी! लोकतंत्र में क्या लोक के लिए कोई ऐसी जगह है जहां वह अधिकार जता सके? ऑफिस में जाने पर बाबू लोग डांट देते हैं. उनके आगे खड़े हुए किसी किसान की मुद्रा अगर आप देखेंगे तो बड़ा आहत महसूस करेंगे. वहां का चपरासी भी उस किसान का भगवान ही होता है. किसी भी दफ्तर में वीआइपी अपना काम आसानी से करा लेता है जबकि आम आदमी लाइन में खड़ा रह जाता है. विरोध करने पर धमकियां और गालियां भी सुनता है. संपादक जी! इस वीआईपी कल्चर को दूर करने की दिशा में सार्थक प्रयत्न किए जाने चाहिए. मीडिया, मानवाधिकार और सामाजिक तथा साहित्यिक लोगों को इसके लिए कोशिश करते हुए आम आदमी को जागरूक करना होगा.

इधर कुछ फैशन और बढ़ते जा रहे हैं- जरा-जरा सी बात पर चक्का जाम करने का, पुतला फूंकने का, पथराव करने का, सरकारी-गैर सरकारी गाड़ियों को पेट्रोल छिड़क कर जलाने का. भले ही इसमें निर्दोष घायल हों तो हों, उन्हें क्या? अगुआई करने वाले तो पहले ही निकल लेते हैं. अगर उन्हें चोट आ गई तो राजनीति करवट बदल लेती है. कुछ तो किया जाना चाहिए कि इन परिस्थितियों से छुटकारा मिल सके.

अरविन्द अवस्थी, मीरजापुर (उ. प्र.)

मौसम का यथार्थवादी चित्रण

प्राची का माह अप्रैल 2015 का अंक अत्यंत ही आनन्ददायक लगा, क्योंकि इसमें कहानियों की अधिकता है. कहानियों के अतिरिक्त जो प्रभावित करने वाली विषय वस्तु है, वह है अंक का सम्पादकीय. 'वसन्त नहीं आया' में सम्पादक महोदय ने बदलते हुए मौसम का बहुत ही यथार्थवादी चित्रण किया है. अब यह समझ में नहीं आ रहा है कि इस समय कौन सी ऋतु चल रही है. बेमौसम की बरसात ने इस वर्ष फसलों की जो बर्बादी की है उसका दर्द किसान ही समझ सकते हैं, लेकिन सरकार उनका दर्द नहीं समझ सकी. उन्हें मुआवजे के रूप में जो धनराशि दी जा रही है वह उनका मजाक उड़ा रही है. शासकों

को चेक बांटते समय यह अहसास नहीं हो रहा है कि इस धनराशि से उनके नुकसान की भरपाई होगी या नहीं. मैंने इस संबंध में माइकिल क्रिस्टन की पुस्तक 'ग्लोबल वार्मिंग' के कारण जलवायु में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होने पर बहुत चिंता व्यक्त की है. जलवायु में जो अचानक परिवर्तन हो रहे हैं वह विश्व के सभी देशों के लिए चिंता का विषय है.

कहानियों में मुझे 'पिकनिक' बहुत ही मनोरंजक लगी. इसमें कहानीकार ने फ्रायड के मनोविज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त को सिद्ध किया है कि हमारी जो इच्छाएं बचपन में या जवानी में तृप्त नहीं हो पाती हैं उन्हें तृप्त करने की कोशिश करते हैं. यही कारण है कि बुजुर्ग लोग स्वादिस्ट भोजन, ऊंची शराब और ऊंची सिगरेट पाकर उन पर टूट पड़ते हैं और अपनी उम्र और अपनी बीमारियों को भूलकर भरपेट भोजन करते हैं और परिणाम स्वरूप पुनः बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं.

पत्रिका की अन्य कहानियों में 'मुड़े सिर का दर्द' एक बालक के दर्द को व्यक्त कर हमें करुणा से भर देती है परन्तु हमें हंसने को मजबूर भी कर देती है, जब सत्तू पेंट्या को दस्त की दवाई दे देता है और वह बार-बार बाथरूम जाता है. सत्तू अपने कष्ट से बचने के लिए जो शरारत करता है वह पाठक को खुश कर देता है.

'कौन सा बेहतर' में कहानीकार मुज्तबा हुसैन किराए के मकान को स्वयं के मकान से बेहतर बताते हैं. यह हमारे देश के लोगों का दुर्भाग्य है कि वे अपना खुद का मकान नहीं बना पाते हैं. कहानी का पात्र 50 वर्ष की आयु में 100वां मकान में अपना सामान रखता है. किराएदार कितने मजबूर हैं कि उन्हें मकान मालिक ढूंढ़ते फिरते हैं. लोगों की यह बदहाली कब खत्म होगी, कहा नहीं जा सकता.

प्राची की अन्य रचनाएं भी प्रशंसनीय हैं. मैं प्राची की उत्तरोत्तर प्रगति की हार्दिक शुभकामनाएं करता हूं.

शरदचन्द्र राय श्रीवास्तव, जबलपुर (म.प्र.)

धर्म खतरे में नहीं है

प्राची पत्रिका का माह फरवरी-15 का अंक यद्यपि मुझे प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु किसी मित्र से पत्रिका पढ़ने हेतु उपलब्ध हुई. सम्पादक महोदय द्वारा स्थायी स्तम्भ 'आपने कहा है' कालम पर सम्पादकीय के प्रति मेरी पत्रिका की प्रथम भावाभिव्यक्ति ''नामर्द गुण्डे'' को पत्रिका में प्रकाशित किया, इस हेतु धन्यवाद प्रेषित करते हुए पत्रिका के प्रति हेतु निवेदन करता हूं. साथ ही साथ पुनः सम्पादकीय पर अपनी अभिव्यक्ति प्रेषित करना चाहता हूं कि-

''धर्म सनातन है सदा, धरा प्रकृति विश्वास.
पर हित में पुरषार्थ कर, तज निजता की आस.
जियो और जीने दो सबको, यही धर्म का मर्म.
अफवाहों से दूर रह, करो सदा सत्कर्म.
धर्म न खतरे में कभी, खतरे में षड्यन्त्र.
मठाधीश कुर्सी शरण, रहते हैं बहुमंत्र.
सावधान इनसे रहें, रहें प्रकृति के संग.
भारतदेश अखण्ड है, सावधान गणतन्त्र.''

धर्म के नाम पर आम जनता का ध्यान मठाधीशों और सत्ताधीशों द्वारा किए जा रहे अनाधिकार चेष्टा से हटाकर धर्मसंकट के नाम पर भय पैदा करते रहना भी एक बहुत बड़ी साजिश है. संभवतः सम्पादकीय में इसी साजिश से पर्दा हटाने का सराहनीय प्रयास है. 'फैसला' कहानी समाज द्वारा औपचारिकता की ढकी चादर को उघार फेंकने जैसी यथार्थ व्यथा है.

पुनश्चः

वसन्त रूठ गया है

'वसन्त चुराया नहीं गया, रूठ गया है'. 'वसन्त नहीं आया' सम्पादकीय में संपादक महोदय की पीड़ा इस बात पर बलवती हो रही है कि फागुन तो आया, किन्तु वसंत नहीं आया. मानव जाति की कामनाओं को बर्फ से पीटकर अधमरा कर दिया है. शिथिलता की चादर उढ़ाकर इति कर दी है. आखिर ऐसा क्यों? वसन्त को खुद नहीं मालूम कि ऐसा करके उसने कितने लाखों लोगों की उम्मीदों पर पानी फेर दिया है. प्रकृति-पर्यावरण से लेकर घर-परिवार, समाज और राष्ट्र सबका सब विपरीत दिशा में जा रहा है. सम्पादक महोदय की पीड़ा इस बात पर भी अडिग है कि वसन्त ने ऐसा दगा पहले कभी नहीं दिया, न कभी ऐसी बेरुखी दिखाई, जैसा कि इन दिनों दिखा रहा है और मौसम को आगे कर अपना बचाव जनता की नजरों से साफ-साफ कर रहा है, क्योंकि आम जनता कहती फिरती है कि क्या किया जाय, मौसम खराब है यानी सबकुछ प्रतिकूल है और इसके लिए केवल और केवल मौसम दोषी है. वसन्त साफ बच निकला, पर हमें तो ऐसा लगता है कि कहीं ये सब मनुष्य के आचरण का प्रभाव तो नहीं है, क्योंकि आज का मानव-समाज हर कार्य गलत समय पर और गलत तरीके से कर रहा है. सोने के समय कार्य और कार्य के समय सो रहा है. तब प्रकृति को कैसे दोषी बनाया जा सकता है. बस

यही विडंबना है कि आजकल कुत्ते भी आदमी का आचरण करने लग गए हैं और आदमी कुत्तों का अनुसरणगामी हो गया है. शायद यही कारण है कि वसन्त को किसी ने चुराया नहीं है, बल्कि वह मानवीय आचरण से खफा होकर रूठ अवश्य गया है.

''आदमी अनुसरण करता श्वान का,
फिर दोष देता है सदा भगवान का.
भगवान भी हैरान है इन्सान से,
भेद कर पाया नहीं जो आदमी से श्वान का.''
''मौसम की उद्घोषणा केवल शिष्टाचार,
सरकारी दफ्तर लगे एक नया अवतार.''

केशरीप्रसाद पाण्डेय 'वृहद', जबलुपर (म.प्र.)

सावनदादा की मनमानी

प्राची का प्रत्येक अंक मुझे समयानुसार प्राप्त हो रहा है. धन्यवाद! हर बार अच्छी-अच्छी, सारगर्भित, उत्कृष्ट रचनाएं पढ़ने को मिलती हैं. विभिन्न समसामयिक विषयों पर अपनी प्रेरक और प्रभावित करनेवाली सम्पादकीय मन को छूती है. इस समय लगातार आपकी धारदार कलम जलवे बिखेर रही है. अप्रैल, 2015 के अंक में आपकी सम्पादकीय झकझोरने वाली है, जो सीधे दिल पर उतर गयी, जिसने मुझे कलम उठाने पर मजबूर कर दिया. आपने बिलकुल सही लिखा है, पहले मौसम कभी-कभी दगाबाजी करते थे, अब वह भी नेताओं जैसे हो गए हैं, हर बार धोखा दे जाते हैं. मौसम के मिजाज के साथ ही साथ आज मनुष्य हर पल अपनी सोच और चाल बदल रहा है. आत्म अहंकार और पाखण्ड में जीनेवाले कुछ लोग सिर्फ अपना ही भला सोचते रहते हैं. संकीर्ण मनोवृत्ति के ये लोग कब, कहां और कैसे अपमानित करना है, नुकसान पहुंचाना है, बस यही सोचते रहते हैं. इनकी स्वार्थपरता ने नकारात्मक शक्ति को जन्म दिया है. निगेटिव पावर वाले लोग दूसरों को दुख पहुंचाकर, हीनताबोध कराकर मानसिक रूप से प्रताड़ित करते हैं. इसी में ये खुश होते हैं. इनकी उम्र कुछ भी हो, चाहे इनके पैर कब्र में लटके हों, पर ये अपनी आदतें, अपनी चाल और अपनी महत्त्वाकांक्षा से पीछे नहीं हटते. ऐसे लोग पूर्वजों की विरासत के बदले अपने आपको बहुत बड़ा ज्ञानी-ध्यानी, सभ्य और विद्वता का ठेकेदार समझते हैं. ऐसे लोग कुण्ठाग्रस्त होते हैं और सोचते हैं, उन्हें अपनापन मिले और मन की शान्ति मिले. मन की शान्ति के लिए प्रेम और सहयोग का मार्ग अपनाना होगा, नकारात्मक सोच, क्रोध और घृणा को बढ़ाता है. परन्तु इन सावन के अंधों को क्या कहा जाय. इन्हें तो सब हरा-हरा ही नजर आता है. इनकी सोच यही है. इस प्रजातांत्रिक युग में यदि सम्मान के साथ जीना चाहते हो, तो दादागीरी करो और सावन दादा पहले से ही अपनी दादागीरी से युवामन में अपनी बिजली गिराता आ रहा है. विरहणियों को रुलाना इसका काम ही है. सावन दादा अपनी दादागीरी कायम रखने के लिए कभी-कभी बाढ़ और तूफान भी लाता है. अब दादाओं का क्या कहना, जब मन हुआ आए, जब मन होगा जाएंगे. इस बार शायद ''सावन का महीना पवन करे शोर, जियरा रे झूमे ऐसे जैसे वन मा नाचे मोर.'' से अति प्रसन्न हो, दादा जाने का नाम ही नहीं ले रहा. दादागीरी की हद हो गयी. बैशाख आने को है, दादा अभी भी मोर को नचाता ही जा रहा है. इतना नाचने से इस राष्ट्रीय पक्षी का क्या होगा. वास्तव में अब मूल प्रवृत्तियां प्रभावित हो रही हैं. मूल प्रवृति का प्रभावित होना ही कलयुग है. कलयुग का ही कमाल है, सावन दादा अभी भी गरज-गरज के साथ बिजली गिरा रहे है. और हम कुछ भी नहीं कर पा रहे है. अब भ्रमर बिचारा क्या करे, भ्रमर को फूलों से, बागों से, बहारों से, वसन्त से मतलब है. अब वसन्त चला गया है, भ्रमर जाए तो कहां जाए, कैसे मन बहलाए, भनभनाए, गीत गाए.

सम्पादक जी आपने स्वयं माना है, प्रकृति जो धारण कर रही है, इसमें हमारा ही दोष है. जब हमारा ही दोष है, तब अपने दोष सुधारने ही होंगे, अन्यथा सावन दादा की मनमानी सहनी ही होगी.

मैं जानती हूं, वसन्त को किसी ने नहीं चुराया है, वसन्त कहां गया है, ये तो नहीं जानती, परन्तु किसके साथ गया है, यह जानती हूं. रंगीली फागुन ही वसंत को बहलाकर कहीं ले गई है. अब संपादक जी आप ही पता लगवाइए, सी.बी.आई, पुलिस की मदद लीजिए, जांच कमीशन बिठाइए, पता चल जाएगा. रंगीली फागुन वसंत को किस कोने में ले गयी है, जहां रंग-बिरंगे फूल खिले हैं, जहां बागों में बहार आई है, निश्चित ही वसंत वहीं मिलेगा.

डॉ. गीता गीत, जबलपुर (म.प्र.)

❑❑

मुसीबत अकेले नहीं आती

'मुसीबत कभी अकेले नहीं आती', जिसने भी इस कहावत को जन्म दिया होगा, वह आज स्वर्ग में बैठकर लोगों के ऊपर मुसीबतों के पहाड़ टूटते हुए देखकर मुस्करा रहा होगा कि उसकी कहावत सत्य सिद्ध हो गयी है. मैं उस महामानव को प्रणाम करता हूं, जिसने भी प्रथम बार इस कहावत का बीज बोया होगा. क्या उसने कभी सोचा होगा, कि आधुनिक मानव बारंबार इस कहावत को याद करने के लिए मजबूर हो जाएगा और प्रतिक्षण उसकी जिह्वा पर यह कहावत बिना किसी सोच विचार के आती रहेगी, और इतनी बार आएगी कि मुसीबत आते-आते नहीं थकेगी, परन्तु जिह्वा घिस जाएगी.

इस कहावत पर कभी किसी ने शोध नहीं किया होगा कि मुसीबत अकेले आती है या अपने पीछे पूरा कुनबा लेकर चलती है. जहां तक कहावत की बात है, कुछ समय पहले तक गाहे-बगाहे लोग कहते ही रहते थे, कि मुसीबत कभी अकेले नहीं आती, परन्तु आजकल तो हर व्यक्ति के होंठों पर यही एक कहावत विराजमान है. मुसीबतें दिन में धूप की तरह और रात में काले अंधेरे की तरह हमारे चारों तरफ छाई हुई हैं. पुराने टूटे-फूटे घर में इतने मकड़ी के जाले तो छोड़ो मच्छर भी नहीं होंगे, जितने एक व्यक्ति की जिन्दगी में मुसीबतें. मच्छरों की संख्या हमारी सरकार की मेहरबानी और मनुष्यों की लापरवाही से बढ़ रही है. सरकार उनको मारने के लिए दवा का छिड़काव नहीं करती और मनुष्य ने मच्छरों के पैदा होने के लिए जगह-जगह प्रसूतिग्रह बनवा रखे हैं. वह भारत की आबादी बढ़ने की गति से होड़ लेते हुए हजार गुना गति से हमारे देश में बढ़ रहे हैं.

खैर, बात मुसीबत की हो रही थी. मुसीबत भी लोगों की सम्पन्नता देख कर आती है. जिस प्रकार भगवान के दर्शन की सुविधा केवल धनी व्यक्तियों को आसानी से प्राप्त होती है, उसी प्रकार धनी व्यक्ति अपनी सम्पन्नता की आड़ में मुसीबतों से भी दूर रहता है. गरीब आदमी को भगवान के दर्शन दुर्लभ होते हैं, परन्तु मुसीबतें उसके जीवन में थोक के भाव में आती हैं.

दुनिया में कुछ ऐसे भी खुशनसीब लोग हैं जिनके ऊपर कभी मुसीबत नहीं आती, जैसे नेता और इस देश के अमीर व्यापारी, घूसखोर अधिकारी और उद्योगपति. इनके घर के दरवाजे कभी गरीबों के लिए नहीं खुलते, तो मुसीबत के लिए कैसे खुलेंगे.

इस दुनिया में कुछ खुशनसीब ऐसे भी होते हैं, जिनके जीवन में एकाध-मुसीबत ही आती है. बाकी जीवन वह खुशहाल रहते है. गाहे-बगाहे बीमार हो गये, अस्पताल में भर्ती हो गए, तो इसी को वह मुसीबत मान लेते हैं. ऐसे लोग बड़े सुविधाभोगी और सम्पन्न होते हैं, सम्पन्न कैसे होते हैं, इसकी अलग कहानी है, परन्तु जैसे-जैसे ये लोग सम्पन्न होते जाते हैं, बीमारियों के रूप में कुछ मुसीबतें इनके शरीर से चिपक जाती हैं, जैसे उच्च रक्त-चाप और मधुमेह, वरना ये लोग सारा जीवन खाते-पीते और खुशहाली में गुजारते हैं. इनके बच्चे बाप की कमाई पर ऐश करते हैं और सड़क पर किसी को भी टक्कर मारकर दूसरों के लिए मुसीबतें पैदा करने का काम करते हैं.

मुसीबत के मारे तो वो लोग होते हैं, जो किसान और मजदूर होते हैं. इनके जीवन में मुसीबतें मैले के ऊपर मक्खियों की तरह भिनभिनाती ही रहती हैं. इनका सारा जीवन कोढ़ में खाज की तरह बीतता है. हमें इतिहास में जाने की आवश्यकता नहीं है. वर्तमान को ही देख लें, तो वस्तु-स्थिति समझ में आ जाएगी.

पहले हम किसानों की बात कर लें. यह जीव हमेशा मौसम की मार से पीड़ित रहता है और मुसीबतों से घिरा रहता है. यह मौसम और सरकार दोनों का सताया हुआ बड़ा जीवटवाला व्यक्ति होता है कि पूरे साल मार खाकर भी दिन-रात खेती में जुटा रहता है. यह व्यक्ति महाजन से उधार लेकर अपने खेतों को जोतकर उसमें बीज डालता है. यह सब तो वह किसी तरह कांख-कांखकर कर लेता है, परन्तु सबसे पहले सूखा उसके लिए मुसीबत बनकर आता है. सूखा उसके खेत के बीजों में अंकुर ही नहीं आने देता. जब किसी तरह नलकूप, नहर आदि के पानी से अपने खेतों को सींचकर वह पौधे उगाता है, उन्हें पाल-पोस कर बड़ा करता है, और जब उनमें दाने आने लगते हैं, तो अचानक मानसून के तेवर बिगड़ जाते हैं. आसमान में काले बादल छा जाते हैं, बिजली कर्कशा बीवी की तरह गरजने लगती है और बादल बूढ़े-बीमार

बाप की तरह गरजने-बरसने लगते हैं. झमाझम बारिश होने लगती है. चारों तरफ लबालब पानी भर जाता है, बाढ़ आ जाती है और किसान की सारी फसल बह जाती है. यह सब किसान के साथ बारिश के मौसम में होता है.

ऐसा ही कुछ हाल उसके साथ खरीफ की फसल के पकने के समय होता है. जिस समय पश्चिम से तेज गर्म हवाएं चलनी चाहिए, आसमान साफ होना चाहिए, कड़ी धूप से सर चटक जाने चाहिए, तभी अचानक इन्द्र देवता अपनी अप्सराओं से नाराज हो जाते हैं, वह उनका नाच-गाना देख-देखकर ऊब जाते हैं. पूरे वर्ष खुशियां मनाने के बाद उनके मन में तबाही देखने की इच्छा बलवती होती है. शायद उन्हें याद आता होगा कि अब धरती के किसानों के चेहरे पर बैशाखी मुस्कराहट आने वाली है. अपनी पकती फसल को देखकर वह नाचेंगे, गायेंगे और फिर खुशियां मनाएंगे. इन्द्र देवता को किसान के चेहरे की मुस्कराहट अपने चेहरे की मुस्कराहट से ज्यादा बड़ी दीखती है. कोई दूसरा हंसे, यह उनसे बर्दाश्त नहीं होता. देवता हंसे तो हंसे, पर मनुष्य क्यों हंसे. वह तो मुसीबतों और दु:खों का पुतला है. अतएव वह तुरन्त वरुण देवता को धरती पर कोपदृष्टि डालने का आदेश दे देते हैं. वरुण देवता सरकारी अधिकारी की तरह ईमानदारी से बेईमानी का काम करते हैं. जिस प्रकार अधिकारी अपने बॉस या मंत्री का आदेश कभी नहीं टालता, चाहे उसके लिए उल्टे-सीधे काम करने पड़ें, गबन करना पड़े और जनता की भलाई के सारे कामों पर धूल डालनी पड़े, उसी प्रकार वरुण देवता भी अपने बॉस इन्द्र का आदेश कभी टालते. इन्द्र का आदेश पाकर वह बेमौसम धरती पर बारिश और ओलों की बरसात करके किसान की पकी-पकाई फसल को खेतों में ही तहस-नहस कर देते हैं.

इसके बाद 'कोढ़ में खाज' का काम सरकार करती है. पहले तो मुआवजे के नाम पर किसानों का मजाक उड़ाती है. मुआवजे की राशि ग्राम-प्रधान, लेखपाल, तहसीलदार और उनके चमचों के बीच बंट जाती है. पीड़ित किसान तक कभी नहीं पहुंचती. किसान की थोड़ी-बहुत फसल जो बचती है, उसका आधे से ज्यादा महाजन हड़प लेता है, क्योंकि उसने किसान को कर्जा दे रखा है और बाकी फसल को व्यापारी औने-पौने दामों में खरीद देता है. शहरों में साग-भाजी अमीर लोग भले ही पचास रुपये किलो से लेकर सौ रुपये किलो तक में खरीदते हों, परन्तु किसान के खेत से वह पांच-दस रुपये किलो के बीच ही बिकती है. इस बार आलू एक रुपये किलो में भी कोई खरीदने को तैयार नहीं है.

मजदूर की हालत से सभी परिचित हैं. इतिहास गवाह है कि मजदूर अपने सारे जीवन में मजदूर ही रहता है और मजदूर ही मर जाता है. कहने को तो उसके खैरख्वाह बहुत होते हैं, नेता और सरकार से लेकर यूनियन लीडर तक, परन्तु उसका भला कोई नहीं कर पाता. सब लोग उसकी भलाई के नाम पर अपनी रोटियां सेंकते रहते हैं, और गरम-गरम रोटियां खाकर अपनी पहले से ही बड़ी तोंद सहलाकर उसे और ज्यादा बड़ा करते हैं, फिर नर्म गुदगुदे गद्दों पर गहरी नींद भरकर मजदूर के जीवन को ऊंचा उठाने के सपने देखते हैं.

सरकार मजदूरों की बड़ी चिन्ता करती है, नेता लोग उसकी भलाई के लिए रात-दिन कसमें खाते हैं, परन्तु उसके वोट पाने के बाद वह रेगिस्तान में दूब की तरह गायब हो जाते हैं. इतनी चिंताओं के बाद भी मजदूरों की हालत बद से बदतर होती जा रही है. सरकार का कमाल ये है कि गरीबों और मजदूरों की भलाई के लिए लागू की जाने वाली सारी योजनाओं कागजों में तो पूरी हो जाती हैं, परन्तु जमीनी हकीकत में उनका कहीं अता-पता नहीं मिलता. सरकारी योजनाओं पर खर्च होने वाले अरबों-खरबों रुपये मंत्रियों से लेकर अधिकारियों-कर्मचारियों और ग्राम-स्तर पर संरपंच की जेबों में पहुंचकर गायब हो जाता है. जिस प्रकार राशन का गेहूं और चावल भारतीय खाद्य निगम के गोदामों से निकलते ही गायब हो जाता है, उसी प्रकार सरकारी योजनाओं का पैसा भी सरकारी खाते से निकलते ही गायब हो जाता है.

कल-कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की हालत दैनिक मजदूरों से थोड़ी बेहतर होती है, परन्तु वहां भी उनका हर प्रकार से शोषण किया जाता है. मालिक के साथ-साथ यूनियन लीडर भी मजदूर का अपने हितों के लिए शोषण करते हैं. पहले तो उसे न्यूनतम मजदूरी पर रखा जाता है. मजदूरी भी रोककर दी जाती है, ताकि वह अपनी पूरी मजदूरी लेकर भाग न जाए. पूरी सुविधाएं नहीं दी जातीं. जान-बूझकर उसके कार्यकाल को नियमित नहीं किया जाता है. अपने हक के लिए लड़ने पर अक्सर मजदूरों की छंटनी कर दी जाती है और उनकी जगह पर नए मजदूरों को उनसे कम मजदूरी पर रख लिया जाता है.

महंगाई और बेरोजगारी जैसी मुसीबतों से आम आदमी प्रतिदिन दो-चार होता ही रहता है.

और अब आते हैं सामाजिक जीवन पर! अभी पिछले दिनों नेपाल में भूकंप आया, तो उसके झटके भारत में भी महसूस किये गये. नेपाल में तो हजारों लोग मृत्यु के आगोश में समा गए तो

भारत में भी मृत्यु का आंकड़ा पचास पार करके शताब्दी पकड़ने के लिए बेताब हो रहा है. भूकंप के झटके अभी भी आ रहे हैं. नेपाल में जान के साथ सम्पत्ति का कितना नुकसान हुआ है, इसका अनुमान लगाना संभव नहीं है और मुसीबत का हाल यह है कि बचाव कार्य अभी पूरा नहीं हुआ, भूकंप प्रभावित लोग अपने घरों से बाहर मैदानों में शिविरों में रहने के लिए मजबूर हैं, कि बारिश का कहर पहले से मुसीबतजदां लोगों को और ज्यादा भयभीत और परेशान करने लगा. नेपाल में जाड़े जैसा मौसम है. आप कल्पना कीजिए, सिर के ऊपर खुला आसमान, ठण्डी रातें और बारिश का कहर! क्या मनुष्य का जीवन ऐसा ही होता है.

आप इसे क्या कहेंगे–'कोढ़ में खाज' या 'मुसीबत कभी अकेले नहीं आती.' मुझे तो लगता है, कोढ़ में खाज कम ही लोगों को होती है; शायद न भी होती हो. परन्तु यह बात शत-प्रतिशत सच है कि मुसीबत कभी अकेले नहीं आती. ऊपर वर्णित घटनाओं से अगर आप इस कहावत का महत्त्व नहीं समझे, तो अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक पर निगाह डालकर देख लीजिए. अभी तक मुसीबतों के दुखों से आप हताश और निराश हो रहे थे, तो अब थोड़ा मजा लेते हुए इस कहावत का रसपान करिए.

शादी के बाद लोग पत्नी नाम की एक मुसीबत घर लेकर आते हैं, तो साली के नाम पर दूसरी मुसीबत दहेज के साथ-साथ उनको दी जाती है. यह दोनों मुसीबतें मनुष्य को पहले बहुत सुख देती हैं, परन्तु कुछ दिनों बाद दुख देने लगती हैं. जब पहली मुसीबत यानी पत्नी पतियों को खराब लगने लगती है, तो दूसरी मुसीबत अच्छी यानी उन्हें साली भाने लगती है और इस भाने और अच्छे लगने के चक्कर में कई बार पति नामक जीव साली नामक मुसीबत को गले लगाकर पहली मुसीबत यानी पत्नी का गला घोंट देता है या उसे हवन सामग्री समझ कर आग के हवाले कर देता है. अब यह कहावत भी तो है कि हवन करते हाथ जलते हैं, सो एक और मुसीबत उसके गले पड़ जाती है. पति अपनी पत्नी की हत्या के जुर्म में जेल की हवा खाने के लिए बिना आपत्ति के शोक गीत गाता हुआ निकल जाता है. इसके बाद घर में बच्चे, ससुराल में साली और उसके मां-बाप तरह-तरह की मुसीबतों से आए-दिन दो-चार होते रहते हैं.

कुछ लोगों को इस बात का मलाल रहता है कि उनकी कोई साली नहीं है. इस बात से वह जीवन भर दुखी रहते हैं, परन्तु जिन लोगों की सालियां नहीं होती, वह अपना दुख दूर करने के लिए गली-गली या अपने कार्यस्थल में सुन्दर मुसीबतों को ढूंढ़-ढूंढ़कर गले लगाते रहते हैं. ऐसा लगता है, जैसे इन लोगों को घर की मुसीबत से ज्यादा बाहर की मुसीबतों से प्यार होता है. यूं तो मुसीबत को कोई प्यार नहीं करता, परन्तु स्त्री नाम की मुसीबत मनुष्य को जीते-जागते मुसीबत नहीं लगती, प्यार उसके लिए अमृत होता है, परन्तु जब वह उसे पीता है, तब वह उसे जहर समान लगता है. जबतक प्यार उसे अमृत लगता है, तब तक वह घर में एक मुसीबत के होते हुए भी दूसरी मुसीबत के पीछे दौड़ता रहता है. इस प्रकार हम कह सकते हैं, कुछ मुसीबतें अपने साथ दूसरी मुसीबतें लेकर आती हैं, तो कुछ मुसीबतों को पाकर लोग दूसरी मुसीबतों को प्राप्त करने का शौक पाल लेते हैं.

मुसीबत तो मुसीबत होती है, यह किसी के गले न पड़े, इसी में मनुष्य की भलाई है; परन्तु अगर किसी को मुसीबतों से प्यार हो, उसे गले लगाने का शौक हो तो साली जैसी मुसीबत को गले न लगाएं, अगर लगा भी लें, तो घर में हवन कभी न करें, वरना याद रखिए 'मुसीबत कभी अकेले नहीं आती.' हवन के बाद दूसरी मुसीबत हथकड़ी लेकर आपके पीछे खड़ी मिलेगी.

और घर से बाहर की मुसीबत चाहे जितनी खूबसूरत हो, है तो मुसीबत और मुसीबत हर हाल में मनुष्य को दुःख ही पहुंचाती है. सावधान! लिख दिया ताकि सनद रहे. बाद में न कहना कि समय रहते सावधान नहीं किया था.

सूचना

वरिष्ठ कथाकार देवी नागरानी के विशेष सहयोग से प्राची सिन्धी कथा साहित्य पर आधारित एक विशेषांक निकालने की योजना बना रही है. आपसे निवेदन है कि सिन्धी साहित्य की विशिष्ट कहानियां, कहानीकारों के जीवन और रचनाओं पर आधारित लेख-आलेख हमें शीघ्राति शीघ्र भेजने का कष्ट करें.

संपादक

यशपाल

'मेरी तेरी उसकी बात : किस की बलि

राज नारायण

(लेखकः यशपाल; लोक भारती प्रकाशन, जनवरी 1974)

यशपाल के लेखन के सम्बन्ध में यह एक सर्व-सम्मत धारणा है कि यह मार्क्सवादी चिन्तनधारा से प्रतिबद्ध एक जनवादी एवं सिद्ध-हस्त रचनाकार हैं. 'दिव्या', 'देशद्रोही', 'दादा कॉमरेड', 'पार्टी कॉमरेड', 'अमिता', 'बारह घंटे' आदि-आदि उपन्यासों में उन की चिन्तनगत प्रतिबद्धता की धार तेज होती जाने के बजाय क्रमशः काल-क्षरित-सी होती गयी है. भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादी के पतन के उत्तर-काल में लेखक के सक्रिय राजनीतिक जीवन में स्थैर्य आया, उस स्थैर्य के अनुरूप उसका तेवर एवं दृष्टिकोण बदला है और उसने मार्क्सवाद को भी अपने बदले हुए रवैये के अनुरूप प्रस्तुत करने की पेशकश की. छठें दशक से चल कर लेखक आगे क्रमशः अन्तर्मुखी होता हुआ मानवीय सम्वेदना की गहराइयां टटोलने लगा और उसने 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य' की झूठी-सच्ची गहराइयों का फलक हमारे समक्ष उजागर कर के रखा. वर्ष 1960 के पश्चात्, विशेष रूप से 1962 से आगे, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर के घटना-क्रमों के परिणाम-स्वरूप परिस्थितिगत अपेक्षाओं के अनुरूप लेखक अपनी प्रतिबद्धता को सुरक्षित न रख सका; अपनी समझ के अनुसार उस में संशोधन कर डाला. तब स्थिर-वृत्तिक चिन्तक एवं सम्वेदनशील यशपाल और भी अन्तर्मुखी बन गये. इस परिप्रेक्ष्य में यशपाल ने और राजनीतिक मतामत पेश किये, उसे दो-टूक शब्दों में ''सुविधावाद'' की संज्ञा मिली, जिसे स्वयं यशपाल ने ''रचनात्मक मार्क्सवाद'' कहा. इस परिप्रेक्ष्य में यशपाल का अन्तर्मन तिलमिला कर सिसकने लगा और वह पीछे मुड़कर निकट अतीत के अपने जीवन एवं समाज का चित्र इस कदर तटस्थ भाव से उतारने में जुट गया, जैसे कोई किसी के सामने आईना रखकर उस व्यक्ति की प्रतिच्छवि दिखाने का प्रयास करे. समसामयिक आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक अन्तर्द्वन्द्वों के थपेड़ों ने यशपाल को और भी व्यथित कर दिया, उन से जूझने के बजाय उन का मन अन्तस्तल से मथ उठाः ''मैं

तुम वो स्वतंत्रता के लिए जूझ कर अपने विचार में स्वतंत्र होकर अन्तस्तल की यह सिसक ही 'मेरी तेरी उस की बात', के रूप में प्रकट हुई, जिसे ''मेरे तेरे उसके विचार के लिए'' वर्ष 1974 में प्रकाश मिला.

उपर्युक्त पंक्तियों में मैंने यह मन्तव्य रखा है कि लेखक ने निकट अतीत के जीवन एवं समाज का चित्र, जिसे उस ने सक्रिय रूप में देखा–जिया है, एक तटस्थ–दर्शी के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है. उपन्यास को पढ़ कर उस की तुलना लेखक के अन्य उपन्यासों से करें तो उपर्युक्त मत की अधिकाधिक पुष्टि होती है. स्वयं लेखक का आत्म–कथन है: ''जैसे आप आईने में अपनी शक्ल देखते हैं, वैसे ही तत्कालीन समाज को कला के दर्पण में देखने–दिखाने की चेष्टा इस में मैंने की है.''

'मेरी तेरी उस की बात' के इस कलात्मक दर्पण में पाठक को जीवन एवं समाज का जो एक सशक्त एवं सर्वसमाहारी प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है वह है सन् 1914 से, विशेषतः 1921 से लेकर 1946 के आरंभ तक की राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक हलचल का यथावत प्रतिबिम्ब. इस हलचल को प्रतिबिम्बित करने में लेखक ने एक अ–सम्पृक्त वैज्ञानिक की दृष्टि अपनायी है और निष्कर्ष स्वयं पाठक द्वारा निकाल लेने की दृष्टि से बोलते तथ्यों की कलात्मक लड़ी पिरो दी है. इस प्रतिबिम्ब में दोनों विश्व युद्ध–जनित विभिषिकाओं के बजाय तत्कालीन राजनीतिक दांव–पेंचों को, जो युद्ध की विभीषिकाओं का उपादान कारण बनी थीं, कथा का अंग बना कर उन्हें प्रामाणिक रूप में उजागर किया है. इस परिप्रेक्ष्य में ही ब्रिटिश साम्राज्यशाही, नाजी जर्मनी, फासिस्ट इटली तथा साम्राज्य–कामी जापान और मित्र–राष्ट्रों की नीतियों का पर्दाफाश बिना किसी पूर्वाग्रह के हो गया है; और, इन शक्तियों के खिलाफ संघर्षरत राष्ट्रीय एवं समाजवादी शक्तियों का पारस्परिक अन्तर्द्वन्द्व भी उद्घाटित हुआ है. कथा की पृष्ठभूमि के रूप में भारत में साम्राज्यशाही के खिलाफ राष्ट्रीय एवं समाजवादी स्वाधीनता आन्दोलन का 25 वर्षों का फलक प्रस्तुत किया गया है. इस फलक पर कांग्रेस (नरम व गरम दल), कांग्रेस समाजवादी, कम्युनिस्ट, रायवादी, क्रान्तिकारी, समाजवादी, गांधीवादी, मुस्लिम लीग तथा इन से सम्बन्द्ध कुछ अवांतर संगठनों की बोलती तस्वीरें लेखक ने जिस प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत की हैं, उस के लिए वह बधाई का पात्र है. इस राजनैतिक पक्ष का एक अन्य महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य यह है कि इस में गांधीवाद का पर्दाफाश उस से कहीं अधिक सशक्त एवं प्रामाणिक रूप में हुआ है, जो लेखक के 'गांधीवाद की शव–परीक्षा' में दिखायी पड़ता है.

नरेन्द्र, रजा, अमित आदि कम्युनिस्टों के ही माध्यम से नहीं, बल्कि स्वयं गांधी के वर्ष 1921 से ले कर 1946 तक के घटना–चक्रों में उनके दांव–पेंच एवं आचार–विचार के विवेचन, हरि भैया एवं नाथशास्त्री जैसे प्रमुख गांधी–अनुयायियों के मात्र आस्था पर आधृत चरमराते तुर्कों, कांग्रेस संगठन की दो-मुंही खोखली नैतिकता, कांग्रेस–समाजवादी अमर–उषा–पाठक के क्रमशः टूटते भ्रम, आदि–आदि प्रसंग–सृष्टि माध्यम से गांधी एवं गांधीवाद की जो प्रामाणिक ''शव–परीक्षा'' दृष्टिगोचर होती है, उस में संदेह या पूर्वाग्रह के लिए कोई अवकाश नहीं मिलता. इस प्रक्रिया में ईमानदार गांधीवादियों का भी भ्रम टूटता दिखाया गया है. सुभाष बोस तथा भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारियों के प्रति गांधी का दृष्टिकोण लज्जास्पद ही था. हिंसा–अहिंसा के प्रश्न पर गांधी की धारणा शोषक वर्ग की पक्षपाती रही थी. साथ ही, लेखक ने पूरी ईमानदारी के साथ जन–मानस पर गांधी के प्रभाव को स्वीकारा है, जो ब्रिटिश–विरोध की अगुवायी में पहल करने के कारण अधिक था. द्वितीय विश्व युद्ध के प्रति कम्युनिस्टों की नीति व भूमिका और खिलाफत एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बन्ध में मुस्लिम सम्प्रदाय की फिरकापरस्ती को भी लेखक ने साधारण पाठक के लिए कथा की संगति में सुस्पष्ट रूप में रख दिया है. उपन्यास का यह सर्वव्यापी पक्ष नयी पीढ़ी के लिए अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि एक रोचक–रोमांचक कथा के आवरण में अपने देश के राजनैतिक–सामाजिक प्रतिबिम्ब का दर्शन अपने–आप में अधिक आकर्षक एवं ग्राह्य होगा. यहां लेखक बौद्धिकता का पलड़ा भारी दिखता है. बीच–बीच में पाठक को राहत देने के लिए लेखक ने तुरंत मनोरंजक प्रसंग छेड़ दिए हैं.

'मेरी तेरी उस की बात–किस की बलि?' शीर्षक की सार्थकता उपन्यास के सामाजिक सन्दर्भों में और अधिक प्रामाणिक एवं सशक्त रूप में सिद्ध हुयी है. तत्कालीन वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा साम्प्रदायिक अन्तर्द्वन्द्व कथाकार की पैनी दृष्टि, सूक्ष्म पकड़ एवं व्यापक मानवीय सम्वेदना की परिधि में अंगीभूत हो कर अभिव्यंजित हुए हैं. लखनऊ नगरी की रंगीनी, तकल्लुफ व तहजीब, तर्ज–ए गुफ्तगू और नवाबी अदब–कायदे के छींटे लेखक ने इन्हीं प्रसंगों में दिये हैं. सेठ परिवार, कोहली परिवार, परिवर्तित–धर्म पंडित एवं पंत परिवार तथा ईसाई बस्ती की जिन्दगी, आर्य

समाजी मास्टर परिवार, परम गांधी–भक्त हरिकृष्ण गर्ग परिवार, पात्रा, मिश्रा एवं निगम परिवार, इलाहाबाद के घोष का संसार, बनारस की रूढिबद्ध जीवन–पद्धति, बम्बई के सद्रुदीन–वली तथा गुजराती परिवार एवं वहां की 'चालों' की दुनिया, बलिया के मास्टर गोबिन्द–शुजा–गुलाम रसूल–कोलेश्वर राव–उपाध्याय, आदि–आदि से सम्बन्धित प्रकरणों में व्यक्ति–वैविध्य का विस्तृत मानवीय दृश्य–पटल चित्रित हुआ है. इन प्रकरणों के माध्यम से लेखक ने विभिन्न सेक्स–स्तरों को भी सम्वेदना के धरातल पर बे–नकाब किया है और तत्कालीन समाज में सेक्स–शिक्षा की भी झलक प्रस्तुत की है. परिवर्तित–धर्म व्यक्तियों का सनातनी संस्कारों के प्रति मोह, वर्ण–व्यवस्था–जनित अनाचार, मत मतान्तरों के टकराव एवं सहिष्णुता के दायरे आदि के सजीव चित्र इन्हीं सन्दर्भों में मिलते हैं. विभिन्न सम्प्रदायों के व्यक्तियों के दैनंदिन जीवन में व्याप्त अन्ध–विश्वास, लोकाचार आदि लेखक की मानवीय सम्वेदना से लिपट कर बोल उठे हैं.

व्यक्ति एवं परिवार तथा समाज एवं व्यक्ति के बीच मध्य–युगीन संस्कारों और आधुनिक बौद्धिकता के मध्य चल रहे टकराव को उभारने की दृष्टि से ये प्रसंग बहुत ही संगीतपूर्ण ढंग से कथा–सूत्र में नियोजित किये गये हैं और स्वाभाविकता भी बरकरार रखी गयी है. प्राचीनता–आधुनिकता के टकराव में समग्रतः देखा जाय तो मुख्य प्रकृति क्रमशः उदारता, सहिष्णुता एवं समवन्य की दिखायी पड़ती है, जिस का प्रतिनिधित्व प्रमुख रूप से वकील कोहली, पंडित धर्मानन्द, रतन लाल सेठ, मास्टर गोविन्द सिंह, हरि कृष्ण गर्ग आदि करते हैं. इन सामाजिक सन्दर्भों ने उपन्यास को चुहुल–विषमताओं का रस, सामाजिक परिवेश का यथार्थभास और संजीदगी प्रदान की है. किसी–किसी स्थल पर इतिवृत के आधिक्य के कारण यत्किंचित नैरस्य के लिए भी अवकाश मिल गया है.

उपर्युक्त राजनीतिक सामाजिक प्रसंगों के माध्यम से लेखक ने अपने अत्यंत प्रिय विषय नारी–पुरुष संबंध, नारी शिक्षा और नारी–मुक्ति के संदर्भ को पूरे उपन्यास के दायरे में उभारा है. एक ओर गौरी, चित्रा, गेती, पुष्पा मध्ययुगीन समाज के रूढिग्रस्त संस्कारों–मान्यताओं के रसायन ने इस कदर जड़–ग्रस्त कर दिया है कि ये आधुनिकता की रोशनी की अपेक्षा मध्ययुगीन जीवन के अंधकार को ही अन्ततः तरजीह देने को विवश हो जाती हैं. ये पुरुष–प्रधान शोषक समाज की विसंगतियों को वहन करती रह जाती हैं. उपन्यासकार हार कर माथा पीट लेता हैः

''आत्म–पीड़न और गुलामी को धर्म मान कर उसके लिए गर्व करने वाले को कौन मुक्त कर सकता है?'' एक विस्तृत काल–प्रवाह के दौर में भारतीय नारी–मानस पर गहरा गये सामन्ती चिन्तनधारा एवं संस्कारों के दूरगामी प्रभाव की ही स्वीकृति उपर्युक्त पंक्तियों में मिलती है, जिसे मिटा देने की बात करना आज भी शेखचिल्लीपन लगता है. इन संस्कारों एवं सामाजिक रूढ़ियों ने मजदूर वर्ग की उन्मुक्त नारी मन्नी की भी बलि ले ली है. दूसरी ओर, दिल्ली के आधुनिक परिवेश से प्रभावित जयरानी एवं किशोरी मीरा, सुशिक्षिता उषा, माया घोष, मौली बोंजा, डॉ. मिसेज मिश्रा, रत्ना सामंत, श्यामा, डॉ. कमरुन्निसा आदि मध्य वर्ग की आधुनिकाएं हैं, जो लेखक की नारी–मुक्त मुहिम की हिरावल हैं. यशपाल को गंवई तथा सामंती संस्कारों की दम–घोंटू जीवन के घूंघट में सिमटी–सिकुड़ी, मैली–कुचैली पुरुष की दासता को अपनी नियति व भाग्य तथा दब्बूपन को अपना शील–स्वभाव मान लेने वाली स्त्रियों की अपेक्षा वेश–भूषा, चाल–ढाल में रोबीली, सामाजिक मेल–जोल में पुरुषों की बराबरी करने वाली शिक्षिता मिसेज चटर्जी, मिसेज मिश्रा आदि तथा परिवार व समाज की सड़ी–गली रूढ़ नैतिक मान्यताओं को खुली चुनौती देने वाली उपयुक्त नारियां ही अभीष्ट हैं. ये उन की नारी–भावना की ध्वजा–वाहक हैं. इन की प्रशंसा में लेखक किलकारियां मारने लगता है. (पृष्ठ 60).

जरा आप भी देखिए, यशपाल की एक आधुनिका को पर्दे के पीछे सड़ रही गेती किस रीझ–भरी ईर्ष्या से देखती की वेश–भूषा, अमर के साथ उस की खुली चुहल, मोटर पर सैर–सपाटे को लेखक ने चोरी–छिपे रस–केलि की इच्छुक एवं परिवार के मध्ययुगीन संस्कारों में जकड़ी बसन्ती तथा सत्या की स्थितियों के विरोधी फलक पर डंके की चोट देकर उभारा है (पृष्ठः 109). इस प्रसंगों में पुरखिनों की खीझ को दिखा कर लेखक ने पाठक के मन को गुदगुदाया है. आचार–विचार, रहन–सहन, विवाह–बंधन तथा देह की पवित्रता एवं काम–सम्बन्ध के परंपरागत रूढ़िबद्ध मानदण्डों को लेखक ने इन आधुनिकाओं के माध्यम से चुनौती दी है. लुके–छिपे काम–संबंध की अपेक्षा खुले मन के काम–संबंध की मान्यता प्रतिपादित की है. पर, तत्कालीन भारतीय समाज के संदर्भ में ऊषा–नरेन्द्र कोहली, माया–घोष तथा उषा–पाठक के सम्बन्ध आरोपित एवं अ–स्वाभाविक लगते हैं. इन प्रसंगों में मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता की तिलांजलि–सी दी गयी लगती है

और नारी–पुरुष की रूमानी आदर्शवादिता हावी हो गयी है. वस्तुतः देखा जाये तो यह मध्यवर्गीय नारी द्वारा सामाजिक रूढ़ियों–जनित अनावश्यक झिझक को काट फेंकने के संघर्ष का चित्र है, जिस पर यशपाल के हर–कटु उपन्यास में जोर है और इस प्रक्रिया में यशपाल यथार्थ से दूर चले गये हैं. नरेन्द्र कोहली–उषा की आत्मीयता को ले कर अमर के संशय का भूत बहुत ही स्वाभाविक है; पर माया–पाठक की आत्मीयता जिस सीमा तक बढ़ गयी है, उस में माया के प्रति घोष का जाना–बूझा मौन मनोविज्ञान की हत्या लगती है, तत्कालीन समाज के परिप्रेक्ष्य में तो और भी तत्कालीन भारतीय समाज के संदर्भ में तथा राष्ट्रीय क्रांति में जनता अगुवायी करने के परिप्रेक्ष्य में उषा के साथ पाठक का बार–बार हाथ मिलाना वास्तविकता की उपेक्षा है और मनोविज्ञान की हत्या तो है ही (नरेन्द्र कोहली तथा बिरजू के इसी तरह के व्यवहार के प्रति उषा बौद्धिक नहीं रह सकी है). एक मार्क्सवादी होने का दावा करने वाले यशपाल को इस तरह के प्रमाद में नहीं पड़ना चाहिए था. इन प्रसंगों में वह मानवीय दुर्बलताओं एवं संवेदनाओं की उपेक्षा कर गये हैं, जिस से अ–विश्वसनीयता की खाईं खड़ी हो गयी है. लेखक ने अन्ततः स्वीकार भी किया है कि संस्कारों को एक झटके से तोड़ देना संभव नहीं है. उषा पाठक से कहती है: ''निरर्थक मान्यताओं एवं संस्कारों को स्वीकार नहीं कर रही हूं, परंतु समाज को एक झटके से बदल नहीं सकती...क्रांति लोगों को तोड़ना नहीं, मोड़ना है'' और, अन्ततः लेखक ने उन निरर्थक मान्यताओं के आगे नारी–मुक्ति की बलि दे दी है, जिन का वह न केवल बुलंदी के साथ विरोध करता आया है, बल्कि उन का तिरस्कार करने में अपने प्रतिनिधि नारी पायों को उच्छृंखलता की हद तक छूट दी है. बहरहाल, यहां पर लेखक के पक्ष में कुछ कहा जा सकता है, जो इस प्रकार है:

लेखक ने अपनी कल्पना की मुक्ति...रूढ़ियों, परंपराओं, निरर्थक संस्कारों से मुक्ति–जनित अंतर–विरोध के कारण ही ''मैटीरिअलिस्ट इन फेथ, आइडियलिस्ट इन प्रैक्टिस'' अमर के साथ उषा की अनबन होती है और बीच में ही अमर–जैसे चरित्र की बलि हो जाती है. पाठक के साथ माया घोष की तरह काम–सम्बन्ध रखने तथा गृहस्थ की तरह सहवास की भी छूट लेखक ने उषा को दी है. पर, अन्ततः बाल–मनोविज्ञान की आड़ ले कर परंपराओं के आगे उषा की बलि की जो प्रक्रिया लेखक ने प्रस्तुत की है, वह उस की अपनी मान्यताओं से हट कर है. यह बहुत ही निराशाजनक अंत है.

प्रश्न उठता है: नारी–मुक्ति के लिए छटपटाती नारी की यह नियति कहां तक ग्राह्य है? लेखक ने बड़ी चालाकी से इसके पहले संयोग का सहारा ले कर उषा को सृजन–शक्ति से च्युत कर दिया है. फिर प्रश्न उठता है: क्या यह ''नार्मल लाइफ'' का संदेश है, जिस की वकालत लेखक ने बार–बार की है? क्या उषा–जैसी नारी पाठक के साथ अन्तरंगता में दूर तक बढ़ जाने के पश्चात् अपने मृत पति के ''नॉर्मल लाइफ'' के अंतिम संदेश को इतनी आसानी से भूल जा सकती है? क्या नरेन्द्र कोहली के साथ उस के सम्बन्ध को स्वाभाविक धरातल पर न पहुंचाना अ–स्वाभाविक नहीं है? पाठक–उषा, माया तथा नरेन्द्र–उषा के प्रसंगों में उपस्थापित नारी–पुरुष सम्बन्धों के विवेचन में लेखक का सम्प्रेष्य क्या है? यह नैतिकता और यह सम्बन्ध आज भी कहां तक ग्राह्य है और कितने लोगों को? 'दादा कॉमरेड' की शैल, 'दिव्या' की दिव्या तथा 'बारह घंटे' की रोजी को यशपाल ने रूढ़िवादी नैतिकता से उबार कर कम्युनिस्ट नैतिकता का पथ दिखाया, किन्तु 'मेरी तेरी उस की बात' की उषा को?

क्या यह यथा–तथ्यता चित्रण मात्र है? उषा–नरेन्द्र के प्रसंग में सामान्य मनोविज्ञान की उपेक्षा दिखायी पड़ती है. नरेन्द्र को सिर्फ कुर्सी–तोड़ कम्युनिस्ट बुद्धिजीवी एवं नारी के साथ सम्बन्ध में स्पेनी मिथक का रसिया जुआं बनाया गया है. क्या यह मध्यम वर्ग बुद्धिजीवी के चारित्रिक अंतर–विरोध की स्वीकृति मात्र है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर यशपाल ने यों दिया है: (दृष्टव्य पृष्ठ 693). यहां पर लेखक ने यह मान्यता प्रतिपादित की है कि क्रांति का अर्थ तोड़ना नहीं, मोड़ना है. दूसरी ओर, माया–पाठक तथा रजा–गेती और उषा–नरेन्द्र के प्रसंगों में लेखक ने वैवाहिक जीवन की विसंगतियों को ब्रिटिश दार्शनिक ब्रट्रेन्ड रसेल की नजर से देखा है; इन प्रसंगों में 'मैरेज ऐंड मॉरल्स' के अभिमत का प्रतिफलन स्पष्ट देखा जा सकता है. ऊपर उठाये गये प्रश्नों का समाधान लेखक द्वारा यथा–स्थिति के चित्रण मात्र की स्वीकृति में नहीं, बल्कि वैवाहिक सम्बन्ध को रसेल के वैज्ञानिक नजरिए से देखने में है.

हाल ही लखनऊ में आयोजित प्रबुद्ध लेखकों की एक गोष्ठी में एक वक्ता ने 'मेरी तेरी उस की बात' के पात्र पाठक को ''बौने चरियों का प्रतीक'' कहा है. भूमिगत जीवन से जो लोग अनभिज्ञ हैं, वे ही पाठक को ''बौना'' कह सकते हैं और उसकी विवशताओं एवं कठिनाइयों के बीच अर्जित उपलब्धियों को नकार सकते हैं.

इस उपन्यास में यशपाल के ध्वजा-वाहक प्रमुख पात्र मध्यम वर्ग के ही व्यक्ति हैं. हम पाते हैं कि उन की नारी-मुक्ति की मुहिम, रूढ़ियों-संस्कारों को चुनौती, राजनीतिक संघर्ष व बहस-मुबाहसा का दायरा, आन्दोलनों का नेतृत्व पारिवारिक जीवन-वृत्त आदि सभी कुछ सेठ रतन लाल, वकील कोहली, प्रोफेसर पंडित, नौकरशाह पंत, प्रोफेसर घोष, उषा, माया, श्यामा, रत्ना, सामंत, डॉ. रजा, डॉ. कमरुन्निसा, रुद्रदत्त पाठक, बृजेश सिंह, सेठ सद्रुददीन आदि लोगों तक सीमित हैं. मेहनतकश निम्न श्रेणी की भूमिका यशपाल के उपन्यासों में सदैव नगण्य ही दिखायी गयी है. लेखक ने क्रांति सम्बन्धी आन्दोलन शहरी लोगों के सहारे ही चलाया है.

लेखक का विश्वास रहा है कि क्रांति शहर से होगी और उसको चलाएगा बुद्धिजीवी वर्ग ही? किन्तु, क्या इस तरह से? लेखक के अन्य उपन्यासों में भी यहीं कार्य पद्धति एवं चिन्तन-धारा प्रतिपादित की गयी है. प्रश्न उठता हैः क्या जनवादी दृष्टि में जनता के सबसे बड़े अंश का सम्वेदनात्मक स्तर पर छोड़ देना एक जनवादी लेखक के लिए क्षम्य है? क्या उस जमाने के सबसे शोषित एवं संघर्षरत वर्ग की उपेक्षा एक जनवादी दृष्टि का परिचायक है? इतने बड़े उपन्यास में उन की कथा उपेक्षित क्यों है?

लखनऊ की उल्लिखित गोष्ठी में ही एक अन्य वक्ता ने एक संगत प्रश्न उठाया हैः ''यशपाल अपने वृहद उपन्यास को किस रचना-सत्य की ओर ले जाना चाहते हैं? यदि वह अभिजात-वर्गीय स्त्रियों के लिए भोजनोपरान्त मनोरंजन के लिए लिखा गया उपन्यास है तो मुझे कुछ नहीं कहना'' यशपाल का जवाब थाः ''अपने लेखन में प्रतिबद्धता को मैं आज भी स्वीकार करता हूं, लेकिन वहीं मनोरंजन को भी तिरस्कृत नहीं करता, बशर्ते कि वह प्रयोजनपूर्ण हो'' उपन्यास में अनार्भुक्त जीवन-धारा, वर्ग, उपन्यास का वृहदाकार एवं उस का मूल्य उपर्युक्त बल देते हैं. मेरे अपने मत में उन की प्रतिबद्धता जनवादी नहीं, मध्यमवर्गीय मात्र रह गयी है; हां, उन का दृष्टिकोण अवश्य ही मार्क्स-एंगेल्स एवं रसेल से प्रभावित है. प्रस्तुत उपन्यास में इन मनीषियों के विचारों का सुर प्रभावी दिखायी पड़ता है.

अब थोड़ी-सी चर्चा इस उपन्यास की भाषा एवं शिल्प पक्ष की कर लेनी आवश्यक है. उपन्यास के कथा-संघटन में लेखक ने यथार्थपरक घटनाओं को आधार बनाया है और कथा के घटक उपादान यथार्थ जीवन से लिये गये हैं. इस यथार्थ जीवन की अभिव्यंजना भी वस्तु परक (यानी जमीनी) भाषा के माध्यम से की गयी है. भाषा-प्रयोग के मायने में 'दिव्या' की तरह यह उपन्यास भी उच्च कोटि का है. समसामयिक परिवेश में समसामयिक भाषा के प्रयोग से वातावरण की सफल सृष्टि हुई है. भाषा की स्वाभाविकता एवं संजीदगी सर्वत्र मिलती है. सटीक-सजीव मुहावरों से उपन्यास की भाषा में चार चांद लग गये हैं. कहीं-कहीं अश्लील भाषा का प्रयोग हुआ है, जो नागर पाठकों को खटक सकती है; किन्तु, जब हम यथार्थ जीवन में ऐसे पात्रों को निःसंकोच, बिना किसी लाग-लपेट के, ऐसी भाषा का प्रयोग करते सुनते हैं तो हमारा संकोच भी मिट जाता है.

इस उपन्यास में तो कई स्थलों पर ऐसी भाषा के बिना सशक्त अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती थी. इस के लिए अतिरिक्त, समग्र उपन्यास की संरचना में यह भाषा बिल्कुल घुल-मिल सी गयी है. वाक्य-रचना पर चलती अवधी (भाषा) के व्याकरण का प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है. दूसरी ओर, लेखक से कुछ अ-सावधानियां भी हुई हैं. डॉ. रजा तथा मास्टर शुजा से कुछ स्थलों पर शुद्ध संस्कृत-निष्ठ हिन्दी बुलवाना तत्कालीन वास्तविकता को नकारना है. इसी तरह, कुछ व्याकरणिक अशुद्धियां भी हैं; जैसेः-'रिक्शा' और 'चर्चा' शब्दों को स्त्री लिंग-पुल्लिंग दोनों रूपों में प्रयुक्त करना; अधिकाशतः अधूरे वाक्यों का प्रयोग, जो शोचनीय है; सामासिक चिह्न आदि. इन के अतिरिक्त, इतिवृतात्मक एवं विवेचनात्मक प्रसंगों में भाषा स्वभावतः तर्क बोझिल हो गयी है.

जहां तक इस (उपन्यास) के शिल्प का प्रश्न है, यह उपन्यास शास्त्रीयता की कसौटी पर उपन्यास-विधा के सारे लक्षणों के साथ खरा उतरता है. कथा-आख्यान का ढंग अधिकांशतः नाटकीय एवं इतिवृत शैली का है. कथा-संघटन में संयोगों एवं प्रक्षेपण की पद्धति का उपयोग इस कलात्मक ढंग से किया गया है कि मन में जोड़-तोड़ का आभास झलक कर तुरंत पूरी तरह से दब जाता है. इस के अतिरिक्त कथा-शिल्प पहले छोटा-सा पौधा, उस में पत्ते, फिर फूल, फिर फल; फिर फूल-फल एवं पत्ते झड़ जाते हैं; वृक्ष बढ़ जाता है और फिर से नये पत्ते, नये फूल, फल, नये पत्ते. यह सिलसिला चलता आता है, वृक्ष बढ़ता जाता है और तने पर पिछले पत्तों-फूलों-फलों के होने के गहरे निशान बनते जाते है. 'मेरी तेरी उस की बात' में इतने अधिक वृत्तांत पिरोये गये हैं कि क्रमशः पिछले वृत्तांत पपीते के तने पर बने निशान-जैसे ही पाठक के मन पर छाये रहते हैं; पाठक प्रस्तुत वृत्तांत की कली, फिर फूल, फिर फल में रमा दिया जाता है और वह वृत्तांत ही उसे पूरा उपन्यास लगने लगता है. हां, जीवन के वैविध्य-बाहुल्य को समेटने एवं सूचनाओं का जाल बुनते समय कथा-तंत्र में एक-दो स्थलों पर अ-व्यवस्था दिखायी पड़ी है...धर्मानन्द पंडित-देवदत्त के

वृत्तांत, विधर्मी नेता जाफरी के प्रसंग, माया का इलाहाबाद से मेल गाड़ी में आने, आदि के वृत्तांत ऐसे ही हैं. सर्वोपरि, उपन्यास की कथा के अनुरूप ही उस के भाषा–शिल्प में महा–काव्यात्मकता आ गयी है.

इस उपन्यास का समग्र प्रभाव गंभीर है. जीवन के उदान्त पक्ष...निःस्वार्थ जन–सेवा, त्याग, प्रेम, बलिदान, सदाचरण, राष्ट्र–प्रेम, प्रगतिशीलता, शौर्य, आदि को यथोचित महत्व देने के कारण यह गाम्भीर्य और गरिमा अपने–आप आ गयी है. परंतु, इस उपन्यास से नवीन संदेश के रूप में हमें कुछ भी नहीं मिला है; संभवतः लेखक का अभिप्रेत भी नहीं था. नरेन्द्र, रजा, उषा पाठक, अमित आदि प्रमुख ध्वजा–वाहक (पात्र) भी अन्तिम प्रभाव के रूप में शून्य एवं शैथिल्य ही दे जाते हैं; भावी संघर्ष के लिए संकेत भी नहीं मिलता है. इसके अतिरिक्त, उषा के जीवन की जो परिणति हुयी है, उस से व्यापक नारी–समाज को बल एवं प्रेरणा मिलने के बजाय निराशा एवं हताशा ही मिलती है, बावजूद इस के कि उषा स्वतंत्र एवं निर्भीक विचारों की प्रतिनिधि पात्र उस की निजी जीवन–यात्रा में आये शैथिल्य का द्योतक मात्र है? अथवा 1946 की विभ्रान्ति एवं शिथिलता का प्रतिफलन है? जो कुछ भी हो, हम लेखक के इस मन्तव्य को सर्वोपरि...रखेंगे कि उस ने निकट अतीत के जीवन एवं समाज को कला के दर्पण में प्रतिबिम्बित किया है और इस प्रतिबिम्ब–दर्शन में भाववादी धारणा के स्थान पर वस्तु परकता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही अन्तर्प्रवाही प्रधान तत्व है. इसी को लेखक का संदेश माना जा सकता है. उस की प्रतिबद्धता भी सही है. समाज एवं जीवन के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण अपने–आप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है.

(नोटः 28 मार्च 1976 के दिन दिल्ली में कथाकार डॉ. नरेन्द्र कोहली द्वारा आयोजित एक साहित्यिक गोष्ठी में 'मेरी तेरी उस की बात... किस की बलि? पर पढ़ा गया परचा. तब इस परचे की एक प्रतिलिपि लेखक यशपालजी को भी प्रस्तुत की गयी थी.)

सम्पर्कः 6-HIG-99, 'हुडा' कॉलोनी
तानाशाह नगर, मणिकोंडा
ग्रेटर हैदराबाद–500089
मोबाइलः 09394508880

❑❑

विशेष सूचना

आजीवन सदस्य/संरक्षक सदस्य

प्राची का संपादन एवं प्रकाशन एक व्यक्तिगत प्रयास है. यह एक दुष्कर एवं कंटक भरा मार्ग है. बिना अर्थ के आज के युग में कोई भी संस्था या निकाय जीवित नहीं रह सकती. खासकर पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तो अत्यन्त जोखिम भरा है. इसमें लागत ज्यादा है, आमदनी कम. **'प्राची'** वैसे भी अव्यावसायिक पत्रिका है, इसके वितरण व प्रसार का माध्यम केवल स्थायी ग्राहक हैं; जो कि नगण्य हैं, ऐसी अवस्था में पत्रिका का नियमित प्रकाशन असंभव सा प्रतीत हो रहा है.

पाठकों तथा लेखकों से मेरा अनुरोध है कि वह पत्रिका के वार्षिक, द्विवार्षिक, त्रैवार्षिक, आजीवन व सरक्षंक सदस्य बनकर इसे आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान कर सकते है. इसका चन्दा निम्न प्रकार हैः-

वार्षिक	:	₹220
द्विवार्षिक	:	₹420
त्रैवार्षिक	:	₹600
आजीवन	:	₹2500
संरक्षक	:	₹5000

आपसे विनम्र निवेदन है कि अधिक से अधिक संख्या में पत्रिका के सदस्य बनकर इसे आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करें; ताकि यह निरन्तर समाज, साहित्य तथा संस्कृति की सेवा में अग्रसर रहे. चन्दा मनीआर्डर या चेक/बैंक ड्राफ्ट प्रज्ञा प्रकाशन के नाम पर भेजें.

आप प्रज्ञा प्रकाशन के चालू खाता संख्या **3058002125, सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया,** जबलपुर शाखा, में भी जमा कर सकते है. इसकी सूचना अपने पूरे पते और मोबाइल संख्या के साथ एस.एम.एस. द्वारा मोबाइल संख्या 9425323193 पर दें.

प्रज्ञा प्रकाशन (प्राची मासिक)
7, श्री होम्स, कंचन विहार, बचपन स्कूल के पास,
लामटी, विजय नगर, जबलपुर-482002 (म.प्र.)
ईमेलः prakashanpragya@gmail.com

महादेवी वर्मा का परिचयात्मक साहित्यिक विमर्श

सीताराम पाण्डेय

रहस्यवाद की उपासिका, वेदना की गायिका, पीर की पुजारिन, करुणा की देवी महादेवी ने अपने जीवन के संबंध में स्वयं कहा है -

मैं नीर भरी दुख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली

आधुनिक मीरा के नाम से विख्यात महीयसी महादेवी वर्मा के बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व में संगीत, काव्य और चित्रकला की त्रिवेणी का संगम है. छायावाद के प्रतिष्ठापक और वर्तमान युग के कवि-आलोचकों में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है. छायावाद के प्रतिष्ठापक और वर्तमान युग के कवि-आलोचकों में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है. महादेवी बीसवीं सदी के हिन्दी काव्य-साहित्य की संवेदनशील साहित्यकार है तथा छायावादी काव्य के प्रमुख स्तम्भों पंत, प्रसाद, महादेवी, निराला में एक है.

छायावादी-युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है. पारिवेशिक-स्थिति परिवर्तित हुई. जीवन में सूनापन अनुभव हुआ. छायावादी रहस्यमयी कवि स्वयं को पाने के लिए अपने अन्तर्मन में गहरे गोते लगााने लगे. अनुभूत क्षणों की प्रतीकात्मक तथा लाक्षणिक शैली में अभिव्यक्त की जानेवाली छायावादी काव्य-धारा अप्रतिहत रूप में चल पड़ी.

छायावाद, हिन्दी काव्य की वह पद्यति है, जो प्रथम विश्व युद्ध से लेकर द्वितीय विश्व महायुद्ध के पहले तक हिन्दी कविता में कायम रही. 'द्विवेदी युग' के बाद का युग ही हिन्दी-काव्य में छायावाद के नाम से पुकारा जाता है.

रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार-''छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में होता है-एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहां उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहां कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यन्त चित्रायी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है. छायावाद का पहला अर्थात मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी काव्य-क्षेत्र में चलनेवाली भी महादेवी वर्मा हैं. पंत, प्रसाद, निराला आदि सब कवि प्रतीक पद्यति या चित्रभाषा शैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाये.''

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार-'' छायावाद'' संबंधी सभी आलोचनाओं का उत्तर महादेवी जी को देना पड़ा, इसलिए उन्होंने बड़े विस्तार से छायावाद में प्रकृति, नारी-भावना, कल्पना, दुखवाद, स्थानुभूतिमयी अभिव्यक्ति, राष्ट्रीयता आदि का सोदाहरण विवेचन किया. कहना न होगा कि छायावाद संबंधी सभी का उच्छेद करने में महादेवी ने सभी छायावादी कवियों से अधिक काम किया.

मानवी के रूप में महादेवी वर्मा का उस धरा-धाम पर प्रथम पदार्पण उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नगर में होली के पावन पर्व के अवसर पर 24 मार्च, 1907 ई, तदनुसार संवत् 1864 ई. में हुआ था. इनके पिता का नाम 'गोविन्द प्रसाद वर्मा' तथा 'माता' श्रीमती हेमन्ती देवी थी. श्री वर्मा बिहार में ही प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत रहे. बाद में लखनऊ के महिला महाविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए. महादेवी वर्मा के पति डॉ. रूपनरायण वर्मा पेशे से चिकित्सक थे.

महादेवी की प्रारंभिक शिक्षा अपने पारिवारिक वातावरण में ही प्राप्त हुई. माता जी के द्वारा सुनायी गयी रामायण और महाभारत की कहानियों ने इनमें साहित्यिक संस्कार का श्रीगणेश किया. इनमें बचपन से ही विलक्षण काव्य-प्रतिभा दृश्यमान थी.

इनका विद्यार्थी-जीवन बड़ा ही उज्ज्वल रहा है. सन् 1921 में 'मिडिल' की परीक्षा में पूरे प्रान्त में प्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण सरकार के द्वारा इन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की गयी. मैट्रिक से लेकर एम. ए. तक की परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करती रहीं. तभी तो इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संस्कृत विषय में एम.

ए. की परीक्षा में सर्वोच्च अंक के साथ उत्तीर्णता प्राप्त कर लीं.

महात्मा गांधी के सुझाव पर महादेवी के द्वारा प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना की गयी और उसके समुचित संचालन के लिए प्राचार्य के पद पर सुश्री वर्मा को ही नियुक्त किया गया. 1960 ई. में महादेवी वर्मा उस पावन प्रतिष्ठान प्रयाग महिला विद्यापीठ की उप कुलपति चुनी गयीं. तब से लगातार उस पद पर बनी रहीं.

उनमें काव्य के प्रति सहज-रुचि बाल्यावस्था से ही थी, उन्हें एक सरस हृदय मिला. यही कारण है कि काव्य-कला में उन्होंने जितनी कुशलता दिखाई, उतनी ही कुशलता चित्र-कला में भी. कभी-कभी तो लोगों के हृदय में द्वन्द्व पैदा हो जाता था कि इन्हें श्रेष्ठ कवयित्री कहें या चित्रकर्मी.

लगभग अठ्ठारह-उन्नीस साल की छोटी उम्र से ही महादेवी काव्य-सर्जना में समाहित हो गयीं और कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएं प्रकाशित होने लगीं. प्रयाग से निकलने वाली महिलोपयोगी पत्रिका 'चांद' का संपादन बड़े मनोयोग और गहरी रुचि के साथ करती रहीं. हालांकि आजकल उस पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो गया है.

उनकी काव्य रचनाएं कालकमानुसार इस प्रकार है :- 'नीहार' (1930 ई.), 'रश्मि' (1932 ई.), 'नीरजा' (1935 ई.), 'सांध्यगीत' (1936 ई.), 'यात्रा' (1940), 'दीपशिखा' (1942 ई.), 'सप्तपर्णा' (1949 ई.), 'हिमालय' (1952 ई.), 'परिक्रमा' (1954 ई.), 'संघिनी' (1965 ई.), 'नीलाम्बरा' (1973 ई.), 'प्रथम आयाम' (1974 ई.).

यात्रा में उन्होंने एक विस्तृत भूमिका तथा कुछ चित्र भी दिये हैं, जो अमूल्य निधि है. यात्रा की भूमिका उनके जीवन-दर्शन एवं काव्य को समझने में बहुत बड़ा आधार है.

रेखा चित्र- 'अतीत के चलचित्र' (1941ई.) 'स्मृति की रेखाएं' एवं 'श्रृंखला की कड़ियां' (1942 ई.)अ'हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य' (1944 ई.) 'पथ के साथी' (1946 ई.) 'क्षणदा' (1956 ई.) 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध' (1962) मेरा परिवार (1972 ई.).

निहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत, इन चारों पुस्तकों को एकत्र करके 'यामा' नामक ग्रंथ का प्रकाशन हुआ है. 'यामा' पुस्तक पर इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिल चुका है.

'सप्तपर्णा' संकलन में महाकवि कालिदास, भवभूति, अश्वघोष आदि संस्कृत महाकवियों की रचनाओं का हिन्दी में छायावाद और भावनानुवाद भी प्रस्तुत किया है.

सन् 1954 ई. में महादेवी दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की सदस्या बनीं. उन्होने प्रयाग में नाट्य-संस्था, रंग-वाणी की स्थापना भी की. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या भी चुनी गयीं.

अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के कारण वे समय-समय पर साहित्यिक संस्थाओं एवं सरकार द्वारा अनेक पुरस्कारों-सम्मानों से सम्मानित होती रहीं. 'नीरजा' काव्य संग्रह पर 'सक्सेरिया' पुरस्कार, 'स्मृति की रेखाएं' के लिए 'द्विवेदी पदक' और 'यात्रा' के लिए 'मंगला प्रसाद पारिपोषिक' से विभूषित किया गया. सन् 1956 ई. में महादेवी जी को भारत सरकार के द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया. 1964 ई. में 'भारती-परिषद्' प्रयाग द्वारा 'भारत-भारती' पुरस्कार और भारत के सर्वोच्च ज्ञान-पीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

प्रत्येक मनुष्य इस धरा-धाम पर अवतीर्णोपरान्त आत्मीयता, सरसता और आनन्द का अनुभव करना चाहता है. स्नेह, प्रेम, अपनत्व आदि के स्पर्श से मानव फूला नहीं समाता. किन्तु दुर्भाग्यवश महादेवी के शारीरिक-सौंदर्य के अभाव में इनके

दाम्पत्य-जीवन में दरार पड़ गयी और प्रियतम की विरह-वेदना ने उनके काव्य में करुणा उत्पन्न कर दी. वही आगे चलकर आध्यामिक-वेदना में परिणत हो गयी.

महादेवी को भगवान बुद्ध की पीड़ा तथा विचारों की प्रवाहित होती हुई एक ऐसी धारा मिल गयी, जिसमें अवगाहन करके जीवन की गति बदल गयी. इस विषय में उनका स्वयं का कहना है– ''बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्ति का अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुखात्मक समझने वाली दार्शनिक सोच से मेरा असमय ही परिचय हो गया था.

महादेवी वर्मा छायावादी पद्यति पर आधुनिक रहस्यवाद की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं. उन्हें विरह में ही सुख मिलता है. महादेवी चाहती हैं उनके जीवन में मिलन न हो. मिलन में तो स्वार्थ है. यह सुख क्षणिक है और क्षण में समाप्त हो जानेवाला है. विरह का अन्त इतनी शीघ्रता से नहीं होता. मनोविज्ञान का कहना है कि विरह में सुख की प्राप्ति असामान्य है. यद्यपि पीड़ा को ही आनन्द जानना सामान्य नहीं है–इस बात को स्वीकार करने में हमें भी यह मानना पड़ेगा कि महादेवी असामान्या हैं.

महादेवी ने यात्रा की भूमिका में लिखा है कि ''दुख मेरे जीवन का ऐसा महाकाव्य है, जो हमें एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है.'' मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, लेकिन दुख को बांटकर, ''किसी प्रकार का दुःख क्यों नहीं, उस समय हमारा हृदय दूसरों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है.''

दुःखवाद, छायावाद की प्रमुख विशेषता है. ''संसार में कोई सुखी नहीं है.'' यह कथन अक्षरशः सत्य है. दुःख के संबंध में महादेवी जी ने स्वयं कहा हैः-

''हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की सीढ़ी तक न पहुंचा सकें, किन्तु हमारा एक बूंद आंसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता.''

दुःख, महादेवी के काव्य में आकाश-सा छाया हुआ है. प्रसाद के काव्य में आंसू के साथ आनन्द की भी कल्पना है. लेकिन महादेवी के काव्य में आंसू, आंसू और केवल आंसू हैं.

रहस्यवाद की परिभाषा बड़ी जटिल है और उसे दो-चार पंक्तियों में बांधना और भी कठिन है. डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार–''रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर्हित प्रकृति का प्रकरण है, जिसमें दिव्य और आलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहता है और वह संबंध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता...? ''वस्तुतः रहस्यवाद आत्मा की परमात्मा के लिए साहित्यिक अभिव्यक्ति है.''

आरम्भ में आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही थे. बाद में परमात्मा ने अपने ही से आत्मा की सृष्टि की. ऐसी रहस्यवादियों की कल्पना है. शरीर धारण करने के बाद जीव परमात्मा को भुला देता है. बाद में किसी गुरु की कृपा से फिर परमात्मा के लिए विरह उत्पन्न होता है. सूफी मतवाले ऐसा मानते हैं. रहस्यवादियों में प्रमुख कबीर ने बार-बार इसी कारण अपने गुरु को महत्व दिया है -

गुरु-गोबिन्द दोउ खड़े, काको लागू पांव
धन्य है रे गुरु आपनो, जिन गोविंद दियो बताए.

इसी प्रकार सूफी कवि जायसी ने भी अपने 'पद्मावत' में गुरु को काफी महत्व दिया है. 'पद्मावती' ही वहां ईश्वर का प्रतीक है और 'रतन सेन' को पद्मावती के सौन्दर्य से अवगत कराता है. जिसे प्राप्त करने के लिए 'रतन सेन' सिंहलदीप की यात्रा प्रारम्भ करता है. 'नागमणी' माया है, जो गुरु रूपी 'तोता' को मार डालना चाहती है, जिससे जीव रूपी रतन सेन को 'पद्मावती' रूपी ईश्वर का पता ही न चल सके.

'महादेवी' रहस्यवादी हैं या नहीं, उसके संबंध में सभी आलोचक एक मत नहीं हैं. रामचन्द्र शुक्ल, विश्वम्भर 'मानव', लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' जैसे आलोचक इन्हें रहस्यवादी मानते हैं तो रामविलास शर्मा, 'प्रभाकर' जैसे आलोचक रहस्यवादी मानने से इन्कार करते **हैं**. डॉ. नागेन्द्र की स्थिति बीच की है.

विचारणीय यह है कि इस विरोधी आलोक में कवयित्री को किस श्रेणी में रखा जाये.

कबीर रहस्यवादी थे. इस बात पर सभी आलोचक एक मत इसलिए है कि कबीर वास्तव में घूम-घूम कर पूरे भारतवर्ष में अपने मत की प्रतिष्ठा करते थे. महादेवी को रहस्यवादी स्वीकार करने में हिचकिचाहट इसलिए होती है कि वे ग्रार्हस्थ जीवन से अलग नहीं हुई हैं. मगर यह कारण भी उचित नहीं, क्योंकि कबीर या जायसी ने भी तो पूर्ण रूप से ग्रार्हस्थ धर्म का परित्याग नहीं किया था.

कहा जाता है कि महादेवी रहस्यवाद का एक आवरण है. इनका जो असफल प्रेम है, वहां रहस्यवाद की चादर ओढ़कर आता है. क्योंकि भारतीय रमणियां अपने प्रेम को खुलकर व्यक्त नहीं कर सकती? अतः महादेवी भी लाज, संस्कृति, परम्परा और मर्यादा के महल में रहकर अपने प्रियतम के प्रेम को परवान

चढ़ाना चाहती है. एक कवियत्री तो और भी खुल नहीं सकती. ..? तभी तो अपने आराध्य प्रियतम को लोक-लाज के भय से अंधकार में आने का आमंत्रण देती हैं-

ये नभ की दीपावलियां, क्षण भर को बुझ जाना
मेरे प्रियतम को भाता है, अधंकार में आना.

परन्तु, आत्मा को हर तरह से परमात्मा के प्रति प्रेम, जिज्ञासा आदि प्रकट करने की छूट है. महादेवी जी ने ऐसा ही किया है और पग-पग पर उन्होंने पर परमात्मा का संकेत किया है.

''क्या पूजा, क्या अर्चन रे
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे.
प्रिय चिरन्तन है सजनी, क्षण-क्षण नवीन सुहागिन मैं
वह रहे अराध्य चिन्मय, तृणमयी अनुरागिनी मैं

जिज्ञासा और कौतूहल रहस्यवाद का पहला चरण है. इस स्थिति में जीव को एक अलय का संकेत मिलता है. इसी समय सर्वात्वाही-भावना का जन्म होता है. कबीर ने भी कहा है-

लाली मेरे लाल की, जित देखौ तित लाल
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल

'प्रसाद' की कामायिनी की प्रारंभिक पंक्तियां ही हैं-

ऊपर हिम था नीचे जल था,
एक तरल था एक सघन
एकलव्य की ही प्रधानता,
कहो इसे जड़ या चेतन.

'निहार' में संकलित रचनाओं में इसका संकेत मिलता है. अलौकिक का संजीत-स्वर उन्हें सुनाई पड़ता है-

जब कपोल गुलाल पर शिशुपाल के
सुखते नक्षत्र के जल बिन्दु से
रश्मियों की कनक-धारा में नहा
मुकुल हंसते मोतियों का अर्घ्य दें.

महादेवी ने कहा भी है कि-'' 'निहार' के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में बड़ी ही कौतुहल मिश्रित-वेदना उमड़ आती थी. जैसे बालक के मन में दूर दिखाई पड़नेवाला अप्राप्य सुनहला उषा और स्पर्श से सुदूर-सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है.''

महादेवी की प्रेम-पिपासु आत्मा अपने प्रियतम के आने की प्रतीक्षा में पलक-पांवरे बिछाए अपलक दृष्टि से आगमन पथ पर निहार रही है. किन्तु, वह निष्ठुर-नायक अपनी प्रेयसि को विरह में तड़पते देख आने में विलम्ब कर, उसके मन में बेचैनी पैदा कर रहा है.

परन्तु तुम आ जाते एक बार,
कितनी करुणा, कितना संदेश
पथ पर बिछ जाते बन पराग,
यदि तुम आ जाते एक बार,

इस प्रकार की जिज्ञासा, कौतुहल उत्पन्न होने के बाद आत्मा-परमात्मा के साथ कोई न कोई संबंध अवश्य बना लेती है. ब्रह्म के लिए जीव को जो तड़पनें होती है, उसका एक आध्यात्मिक पक्ष है. महादेवी मानती है कि जीवन ग्रहण करने के बाद से ही वह वियोग और तड़पन प्रारम्भ हो जाते हैं.

विरह का जलजात जलवन, विरह का जलजात
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात
जीवन-विरह का जलजात

कवयित्री घोर निराशा के क्षणों में रहस्यवाद की ओर उन्मुख हो उठती हैं. विरह-व्यथिता कवयित्री को प्रकाश से अधिक अंधकार अच्छा लगता है. एकान्त, शांत जीवन उन्हें अत्यधिक पसंद है. उनकी आत्मा सूनेपन में समाविष्ट होना चाहती है. चाहे वह सूनेपन व्यष्टिगत हो या समष्टिगत.

अपने इस सूनेपन की
मैं हूं रानी मतवाली
प्राणों के दीप जलाकर
करती रहती दीवाली

'नीरजा' से उधृत महादेवी जी की सर्वाधिक चर्चित कविताओं मे 'दीपक' का विशिष्ट स्थान है. यह प्रतीकात्मक कविता है. इस कविता में कवयित्री ने ईश्वरावतरण अथवा प्रभु मिलन के लिए उनकी उत्कट विरहानुभूति को परमावश्यक बताया है. इस कविता में कवयित्री ने ईश्वरावतरण अथवा प्रभु मिलन के लिए उनकी उत्कट विरहानुभूति को परमावश्यक बताया है. देहाभिमान और आत्माभिमान के विसर्जन से ही आत्मा का उन्नयन होता है. जिस गति से वह विसर्जित किया जाता है, उसी गति से परमात्मा जीवों के समीप से समीपतर आते-जाते हैं -

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण-प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल.

दीपक को अपनी आत्मा का प्रतीक मानकर कवयित्री इस कविता में अपनी साधना-रत आत्मा को समझा रही हैं. वे कहती हैं कि- हे मेरे आत्मा रूपी दीपक, तू प्रेममय होकर ईश्वर की विरहानुभूति कर. तेरा यह जलना सांसारिक दीपकों के जलने और बुझने की तरह अल्पकालिक नहीं है.

प्रभु के विरह में जलने की यह क्रिया युग-युग तक प्रतिक्षण चलती रहती है. इस विरहानुभूति में तुझे अपने सब प्रकार के अभिमानों की आहुति दे देनी होगी. तेरी यह विरहानुभूति और उससे उत्पन्न तेरे रूप की दिव्यता तेरे लिए ही नहीं, अपितु सारे संसार के लिए मंगलमयी होगी. इसलिए तू प्रसन्न मन से निरन्तर जलता जा. महादेवी की इस विरह वेदना में प्रभु-मिलन की आकुलता अन्तर्बद्ध है.

'मेरा जीवन' शीर्षक कविता कवयित्री के व्यक्तिगत जीवन के अनुभूत क्षणों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है. जिसमें महादेवी ने जीवन क्षण-भंगुरता पर प्रकाश डाला तथा निम्नलिखित कविताओं में इसकी पुष्टि भी की है-

ये मुस्काते फूल नहीं, जिनको आता है मुरझाना
ये तारों के दीप नहीं, जिनको आता है बुझ जाना
वे नीलम के मेघ नहीं, जिसकी है धुल जाने की चाह
वे अनन्त ऋतुराज नहीं, जिसने देखी जाने की राह.

कवयित्री कहती है कि यह संसार माया और मोह का है और मानवों की संगति क्षण भंगुर है. यहां कांटों में बन्धुत्व है और फूलों में वैमनसत्व. अतः मिलन को बिछुड़न में संयोग को वियोग में परिणत कर देना, सृष्टि का व्यतिक्रम है.

विकसने मुरझाने को फूल,
उदय होता छिपने को चंद
शून्य होने को भरते मेघ,
दीप जलता होने को मंद
यहां किसका अनन्त यौवन,
अरे! अस्थिर छोटे जीवन.

भाव प्रवणता तथा अन्तः स्फूर्ति महादेवी की विशेषता है-

मोम-सा तन धुल चुका
अब दीप-सा मन जल चुका.

वह खुद भी नहीं जानतीं कि जिस अपरिचित अदृश्य बिंब के विरह में तड़पती है, वह कौन है? प्यारी आंखों में कौन समा गया है तथा कौन उनके हृदय में निवास कर गया है? वह अपनी कसक को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देती हैं-

कौन तुम मेरे हृदय में?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़-घिर झड़ता अपरिचित.
स्वर्ण सपनों का चितेरा
नींद के सूने विलय में
कौन तुम मेरे हृदय में?

'निहार' को अधोपान्त पढ़ जाने पर ऐसा अनुभव होता है कि कवयित्री की आत्मा को अपने प्रियतम से प्रभूत वियोग हुआ है. अपने आंसू के माध्यम से करुण-कथा को उजागर करते हुए महादेवी कहती है-

तब बुझते तारों में नीरव
नयनों का यह हाहाकार
आंसू से लिख-लिख देत है
कितना अस्थिर है संसार.

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है-

उनकी वेदना प्राकृतिक झड़ने की तरह अविरल है जिसमें जल-स्रोत की तरह अखण्ड गति है. उसमें भाषा की सजीवता तथा कोमल-कान्त पदावलि की प्रांजलता आदि सभी कुछ भावपूर्ण सुगेय काव्य की गरिमा के अनुरूप है.

गीत-विद्या में भी महादेवी जी का स्थान सर्वोपरि है. उनका सम्पूर्ण काव्य गेय है. इनकी कविता में प्रेम की पीर और भावों की तीव्रता होने के कारण भाव, भाषा, संगीत की जैसी त्रिवेणी प्रवाहित होती है. महादेवी की गीतों की वेदना प्रणयानुभूति, करुणा और रहस्यवाद काव्यानुभूतियों को आकर्षित करता है.

डॉ. नगेन्द्र ने इनके गीतों की प्रशंसा करते हुए लिखा है- ''प्रचलित लोक गीतों की धनि, गति, लय में अमूल्य काव्य-सामग्री भरकर महादेवी जी ने खड़ी बोली की कविता को 'गीत' के माध्यम से अमर कर दिया है. वेदना, करुणा, आशा, निराशा की सच्ची अनुभूतियों को निश्चल रूप से 'गीतों' में की गयी अभिव्यक्ति से पाठक भाव-विभोर हुए बिना नहीं रहता है.

महादेवी जी ने कहीं प्रेम की विरह की, कहीं सौंदर्य की और कहीं करुणा की अनुभूतियों को गीति काव्य के रूप में व्यक्त किया है.

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी वेदना और अनुभूतियों की सच्चाई पर प्रश्नचिह्न लगाया है, तो दूसरी ओर हजारी प्रसाद

द्विवेदी ने उनके सम्पूर्ण काव्य को समष्टि-परक माना है.

महादेवी एक कवयित्री होने के साथ-साथ एक गंभीर समालोचक एवं गद्य लेखिका भी हैं. सच तो यह है कि गद्य के क्षेत्र में महादेवी जी की देन न्यून नहीं कही जा सकती, वरन् जिस तन्मयता से उन्होंने कविता सर्जना की है, उससे भी अधिक सामर्थ्य के साथ गद्य लिखने में सफलता प्राप्त की है. इनकी विशेषता यह है कि उन्होंने गद्य में भी अपने जीवन के कड़वे तथा मीठे अनुभवों की अभिव्यक्ति बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ की है. परिणामतः इनकी गद्य कृतियां 'संस्मरण और रेखा चित्र' तो है ही, किन्तु वे किसी भी कहानी तथा उपन्यास से कम रोचक तथा आकर्षक नहीं है.

गद्य-साहित्य पर उनके जैसा स्वामित्व किसी कवि या कवयित्री का नहीं दिखाई पड़ता. अंग्रेजी के महाकवि 'मिल्टन' को गद्य-कार के रूप में और 'थॉमस हार्डी' को कवि के रूप में बहुत कम लोग जानते हैं. ठीक उसी प्रकार हिन्दी-साहित्य में महादेवी वर्मा को कवि के रूप में जितने लोग जानते हैं, उतने उन्हें गद्य-कार के रूप में नहीं.

महादेवी जी का गद्य अपनी कोटि आप बनाता है. उनका गद्य उनके काव्य का पूरक है. गद्य में उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से हुई है और काव्य में परोक्ष रूप से. गद्य में ये प्रखर है और काव्य में प्रच्छन्न और अस्पष्ट. इस अस्पष्टता का परिणाम यह हुआ कि उनके काव्य पर रहस्य का वातावरण पड़ गया और इनके मूल में सामाजिक चेतना की उपेक्षा की गयी है.

महादेवी के काव्य को समझने के लिए उनके गद्य साहित्य को भी पढ़ना आवश्यक होगा. इनके काव्य में जिस प्रतीक पद्यति का उपयोग हुआ है, उसे स्पष्ट करने के लिए उनका गद्य-साहित्य सहायक हो सकता है.

'श्रृंखला की कड़ियां' महादेवी जी के विवेचना प्रधान निबन्धों का संग्रह है. 'शीर्षक' के नीचे एक उपशीर्षक देकर लेखिका ने स्पष्टीकरण के रूप में कहा है कि इस पुस्तक में भारतीय नारी की समस्याओं का विशद् विवेचन किया गया है.

आज के समाज में नारी की क्या दशा है, इसका मार्मिक विवेचन इस पुस्तक में परिदृश्य है और यह पुस्तक ''जन्म से अभिशप्त'', जीवन में संतप्त, किन्तु अक्षय वात्सल्य-वरदानमयी भारतीय नारी को भेंट की गयी है. क्योंकि इस पुस्तक में जो कुछ है, सब उसी से संबंधित है.

महादेवी ने नारी समाज का जो चित्रण किया है, वह आज के परिवेश में बिल्कुल सत्य साबित होता है. उन्होंने वकील बनकर नारी-समाज की कोई वकालत नहीं की है. उसकी समस्याओं को उभारने का एक ही उद्देश्य है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने-अपने कर्त्तव्यों और दायित्यों को समझें और प्रेम से मिल-जुलकर इस देश के उत्थान में हाथ बंटायें.

महादेवी के गद्य साहित्य में उनकी कविता की तरह स्थान-स्थान पर इनकी चिन्तनशीतला, देशानुराग, व्यापक मानवीयता अनुभूति और मार्मिकता के दर्शन होते हैं. उनका सहज, संवेदनशील, संघर्षमय जीवन इनके गद्य-साहित्य में वाणी का वर्चस्व लेकर प्रतिध्वनित होता है.

वस्तुतः महादेवी का गद्य, कविता की तरह सौन्दर्य के भुलावे में डाल कर हमें जीवन से दूर नहीं ले जाता. वह तो हमारी शिराओं में चेतना भरकर हमें यथार्थ जीवन में प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्रदान करता है. यह साधना और व्यामोह नहीं है. जीवन के परस्पर पूरक चित्र है. आत्मा का सत्य, शब्द-शब्द , महादेवी के गद्य साहित्य में इतनी सामाजिकता और इतनी यथार्थपरकता है. यह विस्मयकारी तथ्य है कि रहस्यवादी महादेवी के गद्य साहित्य में इतनी सामाजिकता और इतनी यथार्थ जीवन में प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्रदान करता है. यह साधना और व्यामोह नहीं है. जीवन के परस्पर पूरक चित्र हैं. यह विस्मयकारी तथ्य है कि रहस्यवादी महादेवी के गद्य साहित्य में इतनी सामाजिकता और इतनी यथार्थ परकता है. इनके गद्य में करुणा, संगीत, चित्रात्मकता, प्रवाह, भावना, चिन्तन, तर्क आदि सभी चीजों का समावेश है .

महादेवी के प्रेम-भाव में मांसलता या वासना का स्पर्श नहीं है. उनका प्रेम विशुद्ध आत्मा का संगीत है. उनका भाव -सौंदर्य-अनुपम है. योगी जिसे योग से, भक्त जिसे भक्ति से और दार्शनिक जिसे दर्शन से प्प्राप्त करता है, महादेवी ने उसे भाव-समर्पण से प्राप्त किया है.

हिन्दी साहित्याकाश के ज्योतिर्मय नक्षत्र, व्यक्तित्व एवं कवित्व के सारस्वत प्रतिमान कवयित्री महादेवी वर्मा का 11 सितम्बर, 1987 ई. में महाप्रयाण हो गया.

संपर्कः रामबाग चौरी, मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)
मोबाइलः 9386752177

❑❑

मुस्कान

इसराइल

शाम आएगी.

कारखानों के गेटों पर, दीवारों पर पोस्टर चिपक जायेंगे. लाउड स्पीकर के माउथपीस से हवा में उछलेंगे. जुलूस, लम्बी कतारें, दोनों तरफ खड़े लोग, घरों के छज्जों पर औरतें और बच्चे. फिजा को कंपाते नारे–'फेसुए की नागिन वापस जाओ.' घेराव, बैठकी हड़ताल, फिर पूरी हड़ताल.

यह सब होगा मेरे लिए, रंगलाल सोचता है और सिहर उठता है. कृतज्ञता और अपनत्व से आत्म-विभोर है.

सुबह से कई घंटे बीत गये. रंगलाल बैठा है. वह बेचैनी अब उसमें नहीं है, जो कल शाम से थी.

लोग उससे पूछते हैं–''तुमने चार्जशीट का क्या जवाब दिया?''
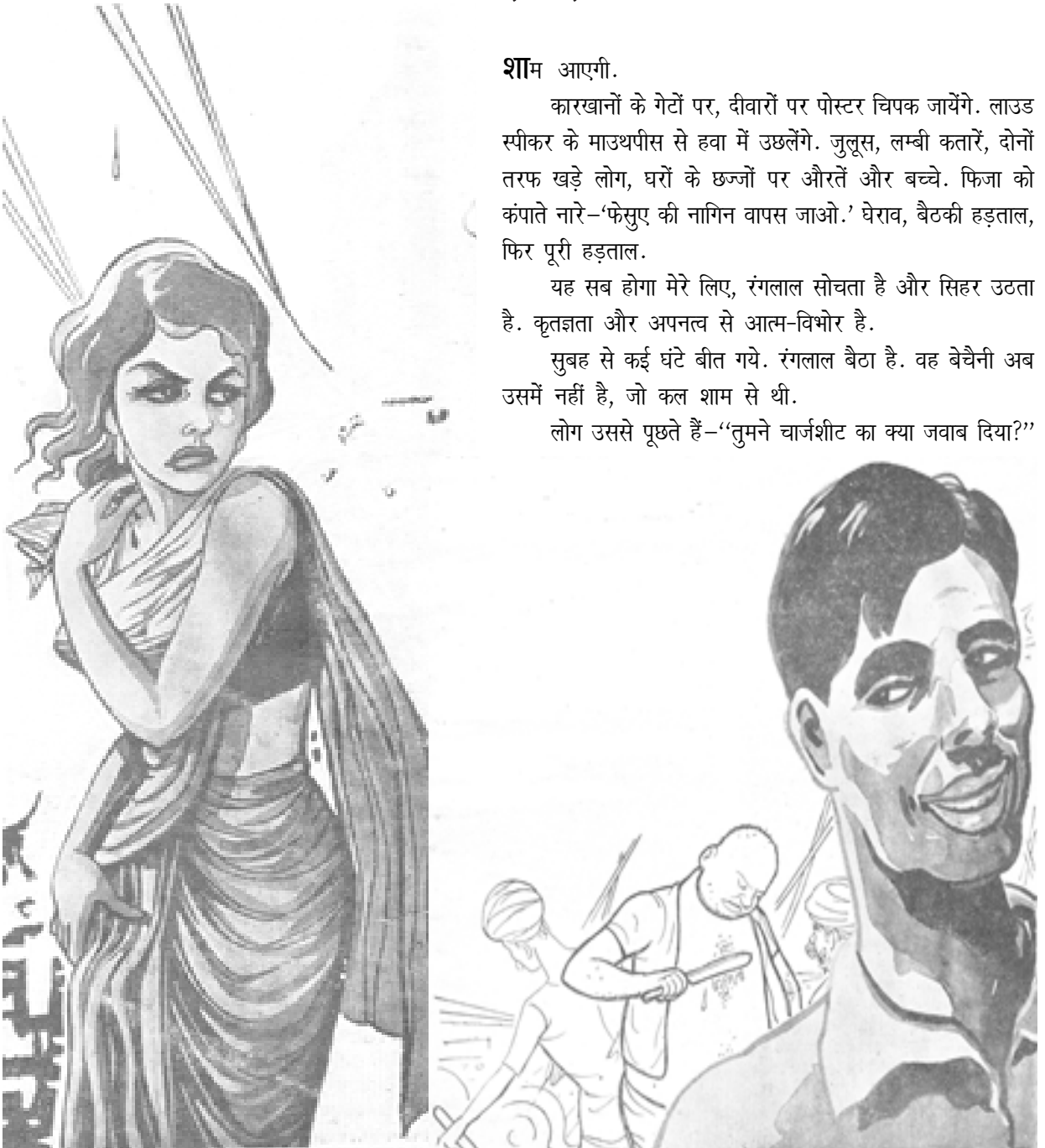
"यह तो यूनियन बाबू जानें. मैंने तो कागज भेज दिया था." वह कहता है.

रंगलाल बारह बजे दिन को कारखाने में जाता है. कुछ देर इधर-उधर घूमता है. फिर कैन्टीन की ओर बढ़ जाता है अकेले. कैन्टीन का फर्श ठंण्डा होगा. वह उस पर कुछ देर लेटेगा, जैसा कि वह आम तौर पर करता रहा है.

किन्तु उसे कैन्टीन के दरवाजे पर ही ठमक जाना पड़ता है. लोहे के पल्लों को पकड़ कर वह, कई क्षण तक खड़ा रहता है. दाहिने हाथ की सबसे छोटी उंगली के नाखून को दांतों से कुतर-कुतर कर कुछ सोचता है. फिर पीछे की ओर मुड़ना चाहता है. मगर मुड़ नहीं पाता. कोई उसकी गर्दन पकड़ कर दरवाजे के अन्दर कर देता है.

"चलो, लौटते क्यों हो?" वह आदमी कहता है.

रंगलाल उस आदमी की ओर गौर से देखता है. वह आदमी मुस्कुरा रहा है. गर्द में दबे, सूखे पत्ते पर गुजरती हवा जैसा रंगलाल का चेहरा कांपता है.

"सोचता हूं, कैन्टीन इनचार्ज भी तो मेम साहब हैं." उसकी आवाज अनायास ही कातर हो जाती है.

"हैं, तो हुआ करें," वह आदमी लापरवाही से जवाब देता है. फिर चुपचाप रह कर, रंगलाल की ओर देखता फिर उसकी पीठ पर हाथ रखता है. "तुम सोचते हो, कि सिर्फ नौकरी ही नहीं जायगी, बदनामी भी होगी. सच ही घबरा गये हो, क्यों?"

रंगलाल सच ही घबरा जाता है. वह उस आदमी की ओर अनटिकी दृष्टि से बार-बार देखता है. कुछ समय देना चाहता है. मगर कुछ भी पकड़ में नहीं आता. फिर गहराई को चाहती-सी आवाज में वह कहता है-"लाइन घूमती कहीं वह आ न जायं." वह माथा खुजलाता है.

रंगलाल की बांह खींचकर बेंच पर बैठाते हुए, वह आदमी कहता है, "मेम साहब इतनी बड़ी भुतनी है."

इस बार रंगलाल भी हंस पड़ता है.

वह आदमी रंगलाल की ओर मुस्कुराती नजरों से देखता है. रंगलाल को उन नजरों में आड़े, तिरछे, खड़े, कई सवाल दिखते हैं. वह कुछ संभल जाता है. "भाई, यही हंसी तो जान मार गयी है. क्यों आती है-अब भी?"

"हंसी तो है. आयेगी ही." वह आदमी अब भी मुस्कराये जाता है.

रंगलाल कुछ नहीं बोलता.

कैन्टीन से निकल कर, वह आदमी भी रंगलाल के साथ चलता है.

"तुम कुछ कहो न. मुझसे कहो." वह आदमी उससे कहता है.

इस बार रंगलाल भरपूर नजरों से उस आदमी की ओर देखता है. "आप बता सकते हैं, कि लालचन काका को चार्ज शीट क्यों नहीं मिली?...मिलनी तो उन्हें ही चाहिए थी." और आहत स्वाभिमान की स्मृति से उसकी आवाज भर्रा जाती है.

"पागल हुए हो? मेम साहब यह कैसे कहतीं कि बुड्ढे ने मेरे गाल पर मूंछें सटा दी थीं. उसके मुंह का गंदा थूक मेरे होंठों पर छितरा गया था. लिहाजा बिलकुल सस्ता तरीका था-"वह नौजवान छोकड़ा मुझको देख कर हंसा."

रंगलाल कोई जवाब नहीं देता.

वह सिर्फ देखता रहता है. वह आदमी रंगलाल का कंधा हिलाता है. "बोलो."

"कुछ नहीं."

"एक बात है."

"क्या?"

"चार्ज शीट का कागज मुझे भी दिखा देना. शायद कुछ बन जाये."

"पता नहीं." रंगलाल शंकित होता है.

"घबराओ नहीं. नौकरी की कोई शर्त नहीं. बस..." वह आदमी फिर रंगलाल का कंधा दबाता है.

"बस क्या?" उसकी आवाज बौखला जाना चाहती है. "साफ कहिए."

"अच्छा, फिर शाम को?" वह आदमी लौट कर, फिर कारखाने में चला जाता है.

रंगलाल खड़ा होकर उसका जाना देखता है. फिर खंखार कर अपना गला साफ करता है, और क्वार्टर की ओर बढ़ जाता है.

यह मार्च महीने की भरी दोपहरी है. सेमल के फूटे कौओं जैसा आकाश साफ है. रंगलाल नहाने के लिये चहारदीवारी फांद कर, तालाब के अन्दर चला जाता है. एक बज गया है. मगर उसने खाना नहीं खाया है. तालाब खाली है. उसे यह अच्छा लगता है. वह सेमल के पेड़ के नीचे बैठ जाता है. सेमल के सूखे-से लगते पेड़ की डालियों में लिपटी कुनरी की झीनी-झीनी छाया. कभी धूप भी उस पर पड़ती है. हवा का गोल-गोल झोंका चहारदीवारी के अंदर जाता है. तालाब का पानी कांपता है. एक सूखी सिहरन रंगलाल तक आती है. चिमनी के धुओं को चैती हवा दूर-दूर तक हुगली के उस पार उछाल जाती है. चन्दन नगर!

बाबुओं की बस्ती पर राख बरसती होगी.

तालाब में तीन-चार छोटे बच्चे हैं. वे सेमल के तोकों को तोड़ने के लिये रंगलाल के पास ही खड़े होकर लग्गी सरका रहे हैं. वह उनकी ओर ध्यान नहीं देता. लेकिन बच्चे अपनी ओर उसका ध्यान खींचना चाहते हैं. वे उससे सेमल के तोके तोड़ देने को कहते हैं. वह ऐसा नहीं करता. बच्चे अकारण ही उसके पास खड़े रहते हैं. उससे तोके नहीं टूटते. इसलिये अब वे कोशिश भी नहीं करते. चुपचाप रंगलाल के पास खड़े रहते हैं. उसने इन बच्चों को कभी नहीं देखा है. होंगे इसी शहर के किसी कोने के.

डेढ़ का भोंपू बजता है. बच्चे भाग खड़े होते हैं. वह सोचता है, 'इनके बाप-माई कारखाने से अब आयेंगे, इसीलिए.'

वह कपड़ा, उतार कर, तालाब में चला जाता है. गर्दन तक जाता है. शांत पानी में अपनी हथेलियों को फैलाकर देखता है. आज उन पर कालिख नहीं है. उसे बड़ा अजब लगता है. वह डुबकी लगाता है, और दोनों हाथों में पांक लेकर ऊपर आता है. पांक को वह कंधे, गर्दन, छाती और कमर पर रगड़ता है. इससे देह की चुनचुनाहट दूर होती है. यह उसके बाप का नुस्खा है.

तालाब से निकलते हुए, उसे याद आती है जनवरी की वह दोपहरी. तालाब भरा था. लोग कपड़े धो-धोकर फैला रहे थे, नहा-नहा कर धूप सेंक रहे थे. पूरा एक अर्ध-उलंग मेरा था. और अचानक ही नई-नई आने वाली मेम साहब की चर्चा छिड़ गई थी.

लालचन ने बड़ी संजीदगी से कहा था–''तुम लोग जिसे खूबसूरत गड़िया कहते हो, वह नागिन साबित होगी. कसूर उसका नहीं. उसके जबड़ों में जहर भरा जा रहा है.''

लालचन के अनुभव को सभी जानते हैं. वह कहा करता है कि, ''तीस वर्ष पहले एक साहब ने ही मुझको ट्रेड यूनियन बनाने, पार्टी में शामिल होने, और मालिकों से घृणा करने की बात कही थी. विलायत के बदमाश लोगों को पकड़-पकड़ कर डंडी में कायदे सिखाये जाते हैं, और फिर उन्हें साहब बनाकर हिन्दुस्तान भेज दिया जाता है...अब यह मेम साहब भी वहीं से ट्रेनिंग लेकर आई है.''

क्या संयोग था, कि उसने ही कहा था–''अब हंसने पर भी चार्ज शीट मिलेगी.''

टर्नबर के बंगाली मिस्त्री और वर्क्स कमेटी के सेक्रेटरी गोरा नाग ने हंसते हुए कहा था–''सत्तरहवीं लेब कांफ्रेन्स फेल! उनकी किसी भी धारा में हंसी डिस्प्यूट पर कुछ नहीं कहा गया है.''

''हां साहब, कुछ नहीं कहा गया है. माफी मांगने की बात तो बिलकुल नहीं. किसी मौके और किसी विषय पर नहीं.''

''...मिस कान्ता के लेबर आफिसर बन कर आने पर मजदूरिनों ने 'औरत-औरत जिन्दाबाद' कह कर उनका स्वागत किया था. किन्तु पहली रश्नलाइजशन में वे चली गईं–तब भी नहीं.''

''कम्पनी की दलाल यूनियन में जब ताला बंद था और उस पर कब्जे के लिये जब लाठियां चलती थीं (जिसमें आपका सर फूटा था), जब कि मिस कान्ता किसी दूसरी यूनियन से बात करने को तैयार न थीं, कारखाना चालू होने से पन्द्रह मिनट पहले चालू होता, और बंद होने के आधे घंटे बाद तक चलता रहता था–तब भी नहीं.''

''...और सब से पहली बार जब यह कहर शैतान की छाया की तरह मशीनों के बीच डोलने लगी–तब भी कुछ नहीं कहा गया. माफी की बात तो बिलकल नहीं.''

रंगलाल तालाब से निकलते हुए उस आदमी से मन-ही-मन बातें करता है–''यही न कि आप काम दिला देंगे? इसीलिए कहते हैं, कि कुछ कहो. खुल कर क्यों नहीं कहते, कि ''चार्ज शीट का जवाब देने से पहले एक बार अकेले में मेम साहब की कोठी पर चलो. वे तुम्हारे कसूर गिना देंगी, और तुम मान कर चले आना. हो गया. बस.''

''नहीं हुआ! बस क्या?'' रंगलाल प्रतिवाद करता है.

लेकिन वह आदमी सामने नहीं है, जिसको सम्बोधित करके वह कहता है–''मैं तुम्हारी हड्डी तोड़ दूंगा. तुम मेरा पीछा मत करो. लोग शक करेंगे, कि रंगलाल बिक गया.''

वह अपने सूखे होंठ चबाता है. तालाब के पानी में डूबने-उतराने से उसकी प्यास और बढ़ गई है. वह तीन बजे खाना खाता है, और चार बजने का इंतजार करने लगता है, जब मेम साहब के सामने उसकी पेशी होगी.

वह सोचता है.

...और तब अचानक ही कारखाना ठप्प हो गया. लोगों ने इसे हड़ताल, तालाबंदी या लॉक-आउट, कुछ नहीं कहा. बल्कि-ठप्प. पोस्टर में यही लिखा गया. तीन दिनों तक मिस कान्ता पोठिया मछली की तरह छटपटाती रही.

अंग्रेज मैनेजर उनके पास खड़ा रहकर पाइप पीता रहता. वे मजदूर प्रतिनिधियों से बातें करतीं. मैनेजर कुछ न कर बोलता. कान्ता गिलहरी की तरह बातों को कुतर-कुतर कर चबातीं, और सब को 'नहीं' में उगल देतीं. फिर मैनेजर उनके कंधे पर हाथ रखता, और लोहे की जाली से हटाकर चैम्बर में ले जाता.

बाहर हो-हल्ला होता. मिस कान्ता के पुतले जलाये जाते. इस पहली आजमायश में ही उनका आहत नारी-सिर पटक-पटक

रह गया. लेकिन फंसे सांप की तरह सिर पटक-पटक रह गया. लेकिन फांस गहरा था. वह निकल नहीं पातीं.

खबरें अखबारों में छपीं. पोस्टर और माईक पर बखानी गईं. शायद उन्होंने अपने जलते पुतले को भी देख लिया. और चौथे दिन बमुश्किल वह एक समझौते पर आईं, कि-मजदूरिनों के मामले को ट्रिबूनल में भेज दिया जाय. आठ घंटे से अधिक काम को ओवरटाइम माना जाय. और सब ज्यों-का-त्यों. आंशिक हार-जीत के साथ कारखाना चालू हुआ.

मगर इस बार!

मामला सिर्फ एक आदमी का है.

चार बजा है. कारखाने की शिफ्ट बदली है. गेटों पर भीड़ उमड़ी पड़ी है. रंगलाल गेट तक जाता है. मजदूर उससे मामले के विषय में पूछते हैं. पर आज शाम मामले की सुनवाई नहीं है. बात कल सुबह तक के लिये टल गई है.

यूनियन बाबू ने साफ इनकार करने की बात सिखाई है. जवाब भी यही है–'देख कर मैं नहीं हंसा.'

लालचन ने चार्जशीट का कागज रंगलाल के हाथ में दे दिया है. वह कहता है–''हम तैयार हैं. मेम साहब ही आज दरबार लगाने को तैयार नहीं हैं.'' वह भाषण देने के रौ में बोल रहा है. भीड़ इकट्ठा हो गई है.

बहुत-से लोग आते हैं, और भीड़ में झांक कर चले जाते हैं. मजाहिया सेंगरा मजदूर नथूनी रंगलाल के कंधे पर हाथ रखता है. बहुत ही गंभीर होकर पूछता है–''रे, क्या देखकर हंसा था, रे!'' लोग हंसते हैं. मगर वह नहीं हंसता. गंभीर मुद्रा में ही फिर धीरे से पूछता है–''कुछ उघाड़ देखा था क्या, रे?''

इसी बीच एक नौजवान कड़क कर कहता है–''उनका छिपा ही क्या है, जो उघाड़ होगा? दिखाती है, तो देखेंगे नहीं?''

''हां, तो यही कहो न भाई, कि कुछ देखा है!'' कहता हुआ नथूनी चला जाता है. हंसी फिर गूंजती है.

लालचन देह पोंछता हुआ, भीड़ से निकलता है. कहता है–''ऐसा मजाक तो कभी न होता था–बिना कारण कारखाने में बखेड़ा खड़ा कर देना. चालीस साल इस कारखाने में गुजरे. मूंछें पक गईं. इन साहब-सूबों का जन्म नहीं हुआ होगा, तब से हूं. बहुत-से बहुत झगड़े, लड़ाई, हड़ताल सब देखे. मगर ऐसा बखेड़ा कभी नहीं देखा.''

रात आती है.

हवा गुम हो गई. धुओं में लिपटी पीली बत्तियां जलती हैं. होटलों में मच्छर और मक्खियां उड़ती हैं.

लोग खाते हैं, चाय पीते हैं. शहर की उदास रात में लोगों का एकरस कलरव है. भतहइयों में भीड़ है. लोग अपने प्लेटों को धो-धोकर अपने से ही खाना निकालते हैं, और एक लाइन में बैठ जाते हैं. बातें-सिर्फ कारखाने की बातें. नौजवान झुंझलाकर कहते हैं–''आप लोगों के लिये अब भी कारखाना चालू है?''

लालचन कहता है–''देहातों में एक-एक इंच जमीन के लिये लोग सिर कटा देते हैं. और यहां पूरी नौकरी चली जाती है, कुछ नहीं बोलते. हद है!''

''हद नहीं है. मगर, काका, इन पेटू लोगों को कहो, कि हमेशा कारखाना न चालू रखें. इनका काम पेट भरना और कारखाने में जाना है. तुम्हारी वजह से कुछ पैसा युनियन को दे देते हैं. इनको न तो कभी चार्जशीट होगी, न कारखाने से निकाला जायगा. ये इस काबिल हैं ही नहीं. ये साठ बरसे नाबालिग हैं. इन्हें आदमी बनाओ.''

प्लेटें चल जाने की नौबत आती है. एक-दूसरे पर गुर्राते, कुड़बुड़ाते, आपस में गाते-बजाते लोग सो जाते हैं.

बहुत रात गये तक जग कर लालचन बूढ़ी आंखों पर ऐनक लगाये, भतहई का हिसाब करता रहता है.

वह आदमी रंगलाल के सिरहाने बैठ कर, फुसफुस करता है–''मान लेते, तो क्या बिगड़ जाता? आखिर तुम को काम ही चाहिये न?''

''जी हां. मगर कसूर मानने के लिए मेम साहब की कोठी पर जाने की क्या जरूरत है?''

''जरूरत है.'' वह आदमी रंगलाल को समझाना चाहता है. मगर रंगलाल कुछ भी समझ नहीं पाता.

उसे हर बात समझ से बाहर लगती है.

वह आदमी उठकर चला जाता है. वह इस रात को ही रंगलाल को कोठी पर ले जाना चाहता है. उसने संकेत भी किया था, कि मामले की सुनवाई इसीलिये टली है.

उसके जाने के बाद रंगलाल छुटकारे की सांस लेता है. लालचन जब-जब उस आदमी को देखता है, उसकी भौंहें तन जाती हैं. रंगलाल आत्म-ग्लानि से भर जाता है. वह क्यों नहीं इस आदमी को आखिरी बार फटकार देता?

भतहई का हिसाब कर लेने के बाद, लालचन उसे पुकारता है–''जाग रहे हो? सो जा, बेटे, यह तो होता ही रहता है.''

रंगलाल उसके इस लापरवाही के लहजे को महसूस करता है. उसे ऐसे केसों से रोज ही उलझना पड़ता है. हार-जीत होती रहती है. लालचन निस्संग होकर सब करता है. कहता है–''काम करना है, तो इस कारखाना, न उस कारखाना. लेकिन जहां रहेंगे, लोहा से लोहा बजा देंगे.''...

और वह तीस वर्षों से लोहा से लोहा बजा रहा है. कितनी बार चार्जशीट और बरखास्तगी हुई, मगर वह लड़-झगड़ कर इसी कारखाने में रहा. एक बार तो डेढ़ साल तक बाहर था. फिर मुकदमे से जीत कर ढोल बजाता, हार पहने कारखाने में आया.

कमजोर, बूढ़ी रगें दुःखती हैं.

रंगलाल के पास ही चारपाई पर पड़ते ही पांचेक मिनट में लालचन कराहने लगता है–नींद में. ऐसी कराह जैसे कोई पीट रहा हो.

रंगलाल धीरे से उठता है, और लालचन के पैताने चला जाता है. उसके पांव पर हाथ फेरता है. पिण्डलियों को धीरे–धीरे दाबता है.

लालचन उठ बैठता है.

''कुछ कहना चाहते हो क्या?''

''काका, आप बहुत थक गये हैं. पांव दबा दूं.''

''नहीं, नहीं. यह बुरी बात है. मैं थकता ही नहीं.''

''आप कराह रहे थे.''

''कहां? नहीं तो.''

''मैंने सुना था.''

''कुछ नहीं. आज तक मैंने नहीं जाना कि कराहना क्या होता है....तुम सो जाओ.''

लालचन फिर सो जाता है. फिर कराहता है. रंगलाल अपने बिस्तरे पर आता है. पंक्तिबद्ध बिछी चारपाइयों को देखता है. क्वार्टर्स के सामने लॉन में सैकड़ों चारपाइयों! अर्ध नग्न पड़े लोग. नींद में अपनी देह को खुजलाते, नोचते, खर्राटे भरते, कराहते, करवटें बदलते लोग. बिलकुल पास–पास सटे, सैकड़ों, पर एक–दूसरे से बेखबर, दूर–दूर बसे लोग. आज रात की हवा. चारपाइयों के ऊपर थरथराती, गुजरती हवा.

रंगलाल सोचता है–यह सब यहीं, ज्यों–का–त्यों रह न जाय. और उसे अकेले यहां से जाना पड़े.

उसे याद आता है–जनवरी की सुबह की हल्की–हल्की, कुहासे में लिपटी धूप. कारखाने के अहाते के फूल की डालियों पर पड़ी राख को झाड़ते हुए माली.

पाट की गांठों से लदी जाती और खाली लौटती ट्रालियां.

''हो अइया, हो हइया!'' दम लगा कर उन्हें ठेलते सेंगरा मजदूर. लॉन की घास पर बिखरे सेंगरा मजदूर. और धूप का काला चश्मा पहने मेमसाहब!

''ये लोग घास पर क्यों बैठे हैं?''

''कुछ नहीं. फुरसत में यों ही धूप लेते हैं.''

मेम साहब जमीन दाबती हुई चली जाती हैं. जगह खाली हो जाती है. अब वहां लोग नहीं बैठते. हां, कभी–कभी साहबों के कुत्ते धूप लेने के लिये घास पर लेटते हैं.

रंगलाल दांत पीसता है.

लेकिन वह ट्रालियों और सेंगरा मजदूरों को वहां से नहीं हटा सकीं. घास के बीच बिछी लाइनों पर ट्रालियां दौड़ती रहीं. सेंगरा मजदूरों के बिरहे पर ठहाके गूंजते रहे.

मेम साहब थूक देती हैं. कभी–कभी लोग उनके इतने नजदीक सट जाते है, कि सड़े पसीने की बदबू उनकी नाक में चली जाती है. लेकिन वह क्या करें? लोग काम का बहाना निकाल कर ही उनके इतने नजदीक जाते हैं.

सेंगरा मजदूर नथूनी बहुत बखान करता है–''कसी–कसी कोड़ा–बाज देह! रे फिरंगनी मुस्करा कर कहती है–ऊं–हूं, ढीला–ढीला. बस, सब ऊपर–ऊपर रंग का पोचारा है. मैंने तो उन्हें कोठी में सोते हुए भी देखा है– गौर से. सब तामझाम है.''

मेम साहब नजदीक से गुजरती हैं. सब चित्र की तरह चुप हैं. उनका चेहरा चढ़ जाता है. आंख पर काला चश्मा और गड़ा लेती हैं. एक दिन सबों ने घेर कर उन्हें सलाम कर लिया. मुंह बड़ा सहज हो गया. कई क्षण तक तरल भाव लिये, खड़ी रहीं. कोई पूछता, तो शायद कुछ कहतीं. मगर कोई भी पूछने को तैयार नहीं हुआ. और वह आगे बढ़ गईं.

रसाघर के मिस्त्री दीवान को एक दिन लोगों ने लॉन में ही पकड़ लिया. रंगलाल ने ही उकसाया था, कि आज इसको पकड़ो.

''मेम साहब के पीछे–पीछे क्यों घूमता है, रे?'' रंगलाल ने ही पूछा.

''क्वार्टर के लिये दरखास्त दे रहा हूं.''

''साले, रोज–रोज दस दिनों से पीछे–पीछे दरखास्त लिये घूमते हो!''

''या कोठी में जाकर पांव टीपते हो!''

हंसी गूंजती है.

बीमा कल का करीम, दीवान को अपनी तरफ खींच कर कहता है–''तू, साले पोंगा दलाली भी न कर पायेगा. और न मेम साहब का ही कुछ कर पायेगा.''

''उसके लिये भी ताकत और हिम्मत चाहिये. बेकार में काहे लाश की गंजन कराने पर तुला है.''

दीवान मिमियाता है.

गुलजार सरदार को आते देखकर, सब सकपका जाते हैं. उनको सलाम करके, अगल–बगल हटने लगते हैं.

सरदार झिड़कते हैं–''तू सब इस तरह भीड़ लगाये क्यों

रहता है?''

सब के सब चुपचाप सुन लेते हैं.

दीवान मौका गनीमत समझ कर निकल जाता है.

कुछ देर बाद मेम साहब हाथ में चश्मा नचाती हुई, ऑफिस से कारखाने की ओर जाती हैं.

दीवान दस गज की दूरी पर मेम साहब के पीछे-पीछे घूमता है, और वैसे ही उनकी कोठी तक चला जाता है.

फिरंगनी कहती है-''मेम साहब पलंग पर लेट जाती हैं. और यह फर्श पर बैठ कर औरतों की तरह उनसे बातें करता है.''

''और लोग भी जाते हैं?'' रंगलाल पूछता है.

''जाते हैं. मगर बताऊंगी नहीं. जान चली जायगी.''

रंगलाल रोकता है. मगर फिरंगनी पकौड़ी का बेसन भिगोने के बहाने भाग खड़ी होती है.

रात ढलती है. रंगलाल करवट बदलता है.

वह सोचता है, 'लालचन काका ने मना कर दिया है, कि वह चार्जशीट की बात घर को न लिखे, नहीं तो रोना-धोना शुरू हो जायगा. चूल्हा नहीं जलेगा. जैसे उसकी मौत हो गई हो. लेकिन ऐसा हुआ, तो कितने दिनों तक छिपा कर चलेगा?'

वह सोचता है.

इतना सब हुआ. लेकिन उसे अकेले सजा क्यों मिली? और इतनी ओछी बात कह कर क्यों सजा मिली?

मेम साहब लाइन घूमने कारखाने में आती हैं. मशीनों की संकरी गलियों के बीच से गुजरती हैं. एक-दो जगह मजदूरों से उनकी देह छू जाती है. कभी उन्हें लगता है, कि जान-बूझ कर ऐसा हुआ. कभी लगता है, कि जगह इतनी कम है, कि सटना अस्वाभाविक नहीं. कभी लाइन घूमते हुए उन्हें लगता है, कि उनके पीछे मशीनें बदस्तूर चलती रहती हैं. मजदूर उन मशीनों पर झुके होते हैं. प्रायः उनकी ओर कोई नहीं देखता होता. वे हतप्रभ भी होती हैं, और लज्जित भी. उन्हें लगता है, कि अगर कोई देखता हैं, तो क्या देखता है?

वह ड्यूटी करने आई हैं, तो उनके मन में यह सब क्यों उठता है? उन्होंने सुना था, कि चटकल के मजदूर बड़े बदमाश होते हैं. उनका चेहरा तनता है. 'इन जंगली लोगों में इतनी हिम्मत कहां, जो मेरी ओर देखें?

वह अकड़कर चलती हैं. कंधे से साड़ी का पल्लू ढलक जाता है. गर्दन से ऊपर की कटे बाल होते हैं. ऊपर और नीचे से आधी पीठ उघाड़ होती है.

चलती मशीन का आदमी अगर उनको देखने लगे, तो उसका जरूर एक्सिडेंट हो जाय.

जमीन में लोटते उनके आंचल को देखकर, मजदूर गर्दन मिलाकर कहते हैं-''यार, यह रोज एक बार घूम जाय, तो झाड़ू देने की जरूरत न रहे!''

मगर उस दिन-

वह स्पिनिंग के बीच घूम रही हैं. माल खराब मिला है. इसलिये गर्दा अधिक उड़ता है-जैसे देहाती सड़क पर धूल.

वह अपने छोटे बालों को झटका देती हैं, और फेसुए के कुछ टुकड़े उनकी छाती पर आकर अटक जाते हैं. उन्हें शर्म आती है. वे थोड़ा किनारे हटकर, आंचल सरकाती हैं, और खड़ी रहती हैं. उस समय हेल्पर रशीद ऊपर की सींक पर चमड़े का सापट फेंकता है. सापट जब सींक पर दौड़ने लगता है, तो बहुत-सा पुराना फेसुआ गिरता है. मेम साहब की देह पर भी कुछ पड़ता है. तेल से चपचप काला फेसुआ जहां पड़ता है, सट जाता है.

जब वह हाथ से पोंछती हैं, तो वह चेहरे पर घिस जाता है. हाथ की तलहटी में भी वही कालिख नजर आती है. मिस कान्ता पांव पटकती हैं. दौड़ते सापट पर हाथ फिसलाते हुए हेल्पर रशीद खड़ा है, और उनकी ओर क्षमा मांगने जैसी दृष्टि से देखता है. उसकी दृष्टि में ग्लानि और अफसोस है. मिस कान्ता जहरीली नजरों से हेल्पर को देखती हैं, और बड़बड़ाती हैं. उनका गला फूल जाता है, चेहरा विकृत हो जाता है. मगर मशीनों की तूफानी गड़गड़ाहट में उनकी आवाज डूब जाती है. कोई नहीं सुनता. इस अवस्था से उनकी उत्तेजना और भी बढ़ती है.

रशीद दो कदम आगे बढ़ कर, अपनी लेबर ऑफिसर से क्षमा मांग लेना चाहता है. मगर उसके कदम उठकर रह जाते हैं

...वह सोचता है, कि कुछ कहते समय मेम साहब के कान तक मुंह ले जाना पड़ेगा. फिर उनके गाल से मुंह सट सकता है.

वह सहम जाता है. निरुपाय हेल्पर असमंजस में खड़ा रहता है.

मिस कान्ता की देह पर पसीने की धार चलती है. वह ब्लाउज में किनकिनाहट का अनुभव करती हैं. लगता है, कि वहां भी गर्दा चला गया है. वह हाथ से देखती हैं.

पसीने पर गर्दा जमा है. चेहरे को उंगलियों से छूती हैं.

चिपचिपाहट से मन भन्ना जाता है. सामने ही एक अधेड़ उम्र का मोटा-सा मजदूर अपनी तोंद और छाती के पसीने और गर्दे को छरी से कांछ-कांछ कर फेंक रहा है. वह बिलकुल उघाड़ है, और गर्द में डूबा हुआ.

मिस कान्ता का जी मिचलाता है. वह आगे बढ़कर, मोटर के नीचे खड़ी हो जाती हैं. रूमाल से चेहरा साफ करती हैं, और

गहरी सांस छोड़ती हैं. मगर वह अभी पूरी तरह आश्वस्त भी नहीं हो पातीं, कि ऊपर से तेल की एक बूंद उनके खुले कंधे पर टपकती है. उन्हें लगता है, जैसे बिजली का टूटा तार आकर शॉक मार गया है. मोटर से टपकी गर्म तेल की बूंद से उनका कंधा जल जाता है. कंधे में जलन होती है. वह बार-बार रूमाल से कंधे को पोंछती हैं.

सब-के-सब दूर से देखते हैं. कोई भी उनके पास नहीं जाता. मशीनमैन ब्रज पण्डा मशीन के ऊपर से झांकता है. लोग उसे इशारा करते हैं. वह विवश भाव जताता है, 'मैं क्या करूं? वहां तो हमेशा तेल टपकता है.'

मशीनमैन को मिस कान्ता देखती हैं. वे फिर बड़बड़ाती हैं. शायद उसे गालियां देती हैं.

अब सच ही अगल-बगल की मशीनें बंद होने लगती हैं.

लोग दूर ही से देखते हैं. ब्रज पण्डा उसी तरह निर्लिप्त देखता है.

अचानक ही मेम साहब को लगता है, कि यह सब किसी साजिश के अंतर्गत उन्हें जलील करने के लिये हो रहा है.

लालचन वहां देर से पहुंचता है. लोग उसे बताते हैं, और वह मेम साहब तक जाता है. वह उन्हें सलाम करता है. पर वह जबाव नहीं देतीं. फिर वह बड़े कायदे से झुककर उनके कान तक मुंह ले जाता है. कहना चाहता है-'मशीनमैन का कसूर नहीं. वहां खड़े होने वाले तमाम लोगों पर तेल टपक सकता है.' मगर कह नहीं पाता. एक ही दो बार होंठ हिलते हैं, कि मेम साहब उसे ठेलकर खुद पीछे हट जाती हैं. जमीन पर थूकती हैं.

लालचन हक्का-बक्का रह जाता है. उसे पसीना आता है.

मेम साहब तेज कदमों से ऑफिस की ओर चलती हैं. अपनी मशीन पर खड़े-खड़े, रंगलाल मुस्कराता है. लालचन काका माथा नीचे किये, कुछ देर तक खड़े रहते हैं.

...इतने लम्बे काण्ड के तमाम लोगों को कुछ नहीं हुआ, और उसे सजा मिल गई. वह कुछ नहीं सोच पाता-न कल के विषय में, न काम के विषय में.

कुछ लोग कहते हैं-''बेवजह चार्जशीट है. इसलिये काम की उम्मीद नहीं के बराबर है.''

कल शाम की एक आदमी की बात भी उसे याद आती है-''बहुत बड़ी वजह है.''

सुबह होती है.

रंगलाल देर तक सोता रहता है. लालचन उसे जगाता है. ''चल, उठ. आठ बजे ऑफिस में जाना होगा.

वह उठता है अलसाया-सा. जैसे सुबह न हुई हो. तालाब में नहाने के लिये जाता है.

और जब वह ऑफिस में वर्क्स कमेटी के सेक्रेटरी गोरा नाग के साथ हाजिर होता है, तो उसके बाल से पानी टपकता है.

वह तालाब से निकल कर, बाल में कंघी भी नहीं करता.

गोरा नाग चार्जशीट का कागज मेम साहब के सामने मेज पर रख देता है. रंगलाल उन्हें सलाम करके, एक तरफ खड़ा हो जाता है. मिस कान्ता व्यस्तता के अंदर ही उड़ती-सी एक नजर उस कागज की ओर डालती हैं, और एक तरफ सरका देती हैं.

उनके इस कार्य में लापरवाही का भाव है. मगर लेबर ऑफिस के क्लर्क अपना काम छोड़कर कनखियों से उधर देखते हैं. जिस मामले की प्रतीक्षा में मेम साहब कल सुबह से बैठी हैं, उसके प्रति यह उदासीनता.

बाबुओं को अचरज होता है. एक-दूसरे का मुंह देखते हैं.

बोलते कुछ नहीं.

गोरा नाग कुछ कहना चाहता है. मगर मेम साहब उसे संकेत से चुप करा देती हैं, और बाहर निकल जाने को कहती हैं.

वह बाहर निकल जाता है.

कागज की ओर दुबारा देखे बिना वह सिर उठाकर, रंगलाल की ओर देखती हैं. बड़े ही राजदार ढंग से कहती हैं-''जब कि तुमने बिलकुल इनकार ही कर दिया, तो कुछ भी कहना बाकी न रहा. अगर तुमने अपनी गलती मान ली होती, तो कुछ सोचा जा सकता था.''

वह रंगलाल की ओर देखती हैं.

वह कुछ नहीं बोलता.

''तो फिर जाओ....क्यों?'' मेम साहब कहती हैं. और वह नजरें गड़ा कर उसकी ओर देखती हैं.

फिलहाल वह उनका चेहरा नहीं है, जो उनका होता था. ऐसा कुछ है, जो ऊपर नहीं आता. छिलके की खुरदुरी कठोरता संभवतः उस तिरस्कार का प्रतिशोध थी, जो उसकी हंसी से उन्हें मिला था.

रंगलाल लौट आता है.

ऑफिस के बाबू अचरज से भर कर देखते हैं. मामला खलास. कोई ट्रायल नहीं. कहां तो एक-एक चार्जशीट पर घंटों ट्रायल होता है.

ऑफिस के बाहर भीड़ जमी है. लालचन भीड़ के लोगों को सम्बोधित करता है-''अगर ऐसा ही है, तो मेम साहब खुली अदालत में इज्जत-बट्टा का केस करें! गरीब के पेट पर लात क्यों मारती हैं?''

"यह जंगली कानून है!" लोग चीत्कार करते हैं.

कान्ता अपने कान पर ऊंगली रखती हैं. दरबान लोगों को ऑफिस के सामने से हटाते हैं.

वह जान गया है, कि उसका डिसमिसल आर्डर अब तक निकल गया होगा. वह आखिरी बार इस कारखाने में है. अब वह आना चाहेगा, तो गेट पर ही दरबान रोक देंगे.

गेट पर भी भीड़ इकट्ठा है. लालचन और गोरा नाग अलग–अलग गिरोहों में लोगों से बातें करते हैं.

वह आदमी अचानक रंगलाल को भीड़ से खींच कर अलग करता है. बहुत ही अफसोसनाक लहजे में कहता है–"आखिर तुमको क्या मिला, बोलो?"

"तब क्या मिलता?" रंगलाल संयत किंतु लापरवाह स्वर में पूछता है.

"तुम्हारा भाग्य खराब है," वह आदमी रंगलाल को हिकारत की नजर से देखता है.

रंगलाल से अब सहा नहीं जाता. और वह उस आदमी की नाक पर जोर से एक हाथ मारता है.

"साला, तू चाहता क्या है?" रंगलाल चीख पड़ता है.

वह आदमी तिलमिला कर, मुंह ढंके गिरता है. फिर खड़ा होता है.

लोग दौड़ पड़ते हैं. "दलाल को हलाल करो."

मगर लालचन और गोरा नाग बीच में आकर बचाते हैं. उसे और मार नहीं पड़ती. वह भाग कर कारखाने में चला जाता है.

रंगलाल हक्का-बक्का है. वह कुछ नहीं सोच पाता.

रात आती है.

रंगलाल को नींद नहीं आती. वह पड़ा रहता है.

लालचन रात भर घूम कर मीटिंगें करता है. चार बजे सुबह लौटता है.

और सुबह से ही बैठकी हड़ताल शुरू होती है. लोग अपनी-अपनी मशीनों पर हैं, पर चुप बैठे हैं. काम नहीं करते.

गेटों पर बड़े-बड़े पोस्टर चिपकते हैं–'रंगलाल को काम दो. कान्ता को निकाल दो.'

दिन चढ़ता है. धूप चढ़ती है

अंग्रेज मैनेजर मजदूरों के सामने आने को तैयार नहीं है.

बड़े ऑफिस के सामने भीड़ बढ़ती जाती है. क्षुब्ध भीड़ नारे लगाती है–"कम्पनी का जुल्म नहीं चलेगा! जंगली कानून वापस लो."

अचानक ही मिस कान्ता कार से उतर कर, बड़े ऑफिस की ओर जाती दिखाई पड़ती हैं. भीड़ उनकी ओर दौड़ती है, और उन्हें चारों ओर से घेर लेती है. कान्ता को बीच में करके, मजदूर उनके चतुर्दिक एक गज जगह छोड़ बांहों का प्राचीर रचते हैं. फिर उसी तरह गोल भीड़ कई बीघे में फैलती जाती है. हजारों हाथ उठते हैं. मुट्ठियां तनती हैं. फिजा को कंपा देने वाले नारे लगते हैं. और–"जवाब दो!"

मगर मिस कान्ता जवाब नहीं देतीं. कानों पर उंगली रखती हैं. वे जब भी देखना चाहती हैं, तो सामने आदमियों का उफनता समुद्र ही नजर आता है. और देख नहीं पातीं.

क्रोध से धधकती भीड़.

धूप तेज है. बिलकुल सिर पर है. मेम साहब के माथे से पसीना चलकर चप्पल तक जाता है. चप्पल भीग रहा है. उनका चेहरा पहले लाल, फिर काला होता है. पसीने की धार के साथ पाउडर की सफेदी और पेंटिंग की लाली बहती है. उनका असली सांवला रंग खुल जाता है. कनपटी पर बाल का गुच्छा पसीने से चिपक जाता है. होंठ चबा कर, वे लिपस्टिक की सम्पूर्ण लाली चबा जाती हैं. काले सूखे होंठ पर अब वह जीभ भी नहीं घुमातीं.

"हम नंगे पांव हैं. पांव जलता है. जवाब दो!" असंख्य होंठों के नारे.

मिस कान्ता प्रायः बहरी हो गई हैं. अब वह कानों पर तलहथी नहीं रखतीं. डेढ़ घंटे बीत गये. मगर एक बार भी उनके कंठ से आवाज नहीं फूटी. वह ज्यों-का-ज्यों चित्र लिखित-सी खड़ी रहीं.

पुलिस और दरबान भीड़ पर पीछे से अचानक हमला शुरू करते हैं. लाठियां बरसती हैं. आंसू गैस के हथगोले पड़ते हैं. जहरीले धुयें की वर्षा होती है. भीड़ में भगदड़ मचती है. भयानक चीत्कार कोहराम मचा है. हजारों की भीड़ दिशाहारा हो, गिरती-पड़ती भागती है.

इस बीच भी बांहों का प्राचीर बहुत देर तक अटूट रहता है. मगर जहरीले धुओं के बीच बच नहीं पाता.

मेम साहब डगमगाती हैं, और गिर पड़ती हैं. लाठियों की चोट से तिलमिलाकर, भीड़ मेम साहब को कुचलती हुई भागती है.

(माया, नववर्षांक-1961 से साभार)

❑❑

शहरी डॉक्टर

इवान तुर्गनेव

एक बार देश के सुदूर इलाके से लौटते वक्त मुझे सर्दी–जुकाम हो गया और मैं बीमार पड़ गया. गनीमत थी कि तबियत जब बिगड़ने लगी मैं शहर के होटल में ही था. मैंने डॉक्टर को बुलावा भेजा. आध घंटे में ही शहर का एक डॉक्टर आ पहुंचा–वह दुबला–पतला, काले बालों और औसत कद–काठी का था. उसने मुझे पसीना आने वाली दवा और राई का लेप लगाने को कहा. फिर बड़ी सफाई से पांच रूबल का नोट अपनी आस्तीन में खोंसकर, खंखारते हुए वह जाने के लिए निकल ही रहा था कि यूं ही बातों में उलझकर रुक गया. मैं खुद भी बुखार के कारण काफी थकान महसूस कर रहा था, ऐसे में नींद न आने का पूरा अंदेशा था. इसलिए गप्प–शप के लिए एक अच्छा साथी पाकर मैं खुश था. चाय आ गई थी. डॉक्टर खुलकर बातें करने लगा. वह एक भावुक व्यक्ति था.

उसकी बातों में उत्साह तो था ही, हास्य–विनोद भी था. अक्सर ऐसा होता है कि कई बार किसी के साथ लम्बे समय तक रहने पर भी खुलकर बातें नहीं कर पाते हैं, जबकि कुछ लोगों के साथ मामूली सी जान पहचान होते ही अपने सारे राज खोल कर रख देते हैं, मानो कंफैशन कर रहे हों. पता नहीं क्यों मेरे इस नये दोस्त को मुझमें ऐसा क्या दिखाई दिया कि उसने मुझे अपने जीवन में घटी एक खास घटना बतायी, जो मैं ज्यों का त्यों उसी के शब्दों में यहां अपने पाठकों के लिए बयां कर रहा हूं:

''यहां एक जज है–मालोव, पावेल ल्यूकिच, उन्हें आप नहीं जानते.'' डॉक्टर ने अपनी धीमी और भर्राई आवाज में कहना शुरू किया. उन्होंने अपना गला साफ किया, आंखें मलीं और बात आगे बढ़ायी.

''हां तो एक बार मैं उन्हीं जज साहब के यहां बैठकर 'प्रिफेरेंस' खेल रहा था. जज साहब बड़े भले व्यक्ति हैं, प्रिफरेंस के खास शौकीन! अचानक उन्होंने मुझे बताया कि बाहर एक नौकर मुझे पूछ रहा है. मेरे यह पूछने पर कि वह क्या चाहता है, उन्होंने बताया कि उसके हाथ में एक पर्ची है जो शायद किसी मरीज ने भेजी हो.''

''पर्ची मुझे दे दो'' मैं बोला.

''क्या किसी मरीज की है?''

''हां यही तो हमारी रोजी–रोटी है''

यह एक विधवा महिला ने लिखी थी. लिखा था कि मेरी बेटी मर रही है, खुदा के वास्ते चले आइए, आपके लिए घोड़ा गाड़ी भेजी दी है.

यह सब तो ठीक है पर वह जगह शहर से 20 मील दूर थी, रात आधी गुजर चुकी थी. सड़कें भी ऐसी कि अधमरा कर दें. फिर वह औरत भी गरीब थी.

चांदी के दो रूबल से ज्यादा नहीं दे सकती थी वह भी बड़ी मुश्किल से. पर तुम जानते हो एक डॉक्टर के लिए फर्ज सबसे महत्वपूर्ण है, कोई मरने की कगार पर होगा सो मैंने अपने कार्ड तुरंत प्रांतीय आयोग के सदस्य कालियोपिन को दिए और घर की तरफ चल पड़ा. घर की सीढ़ियों के पास एक टूटी–फूटी घोड़ागाड़ी खड़ी थी–मोटे–मोटे घोड़े बदरंग और मैला कोट पहने खड़े थे. कोचवान अदब से टोपी निकालकर बैठा था. जाहिर था कि मरीज बड़ा आसामी नहीं था. तुम हंस रहे हो पर मैं तुम्हें बता दूं कि मेरे जैसे गरीब डॉक्टर को यह सब सोचना पड़ता है. यदि कोचवान अकड़कर राजकुमार की तरह बैठा रहता, टोपी को छूता तक नहीं और कनखियों से आपको देखता तो शर्तिया कह सकता हूं कि छह रूबल तो पक्के, पर यहां बात एकदम अलग थी. क्या करता फर्ज तो निभाना था सो हड़बड़ी में मैंने कुछ जरूरी दवाइयां लीं और चल पड़ा. बड़ी मुश्किल से वहां पहुंचा. सड़क में जगह–जगह गड्ढे थे जिनमें पानी भरा था. खैर किसी तरह मैं वहां पहुंचा. घर छप्पर का था, खिड़की से रोशनी बाहर आ रही थी. मतलब, वे मेरा इंतजार कर रहे थे. घर में कदम रखते ही साक्षात् ममता की मूरत एक वृद्धा के दर्शन हुए. मुझे देखते ही उसने कहा, ''उसे बचा लो डॉक्टर, नहीं तो वह मर जाएगी.''

''आप परेशान न हों बस दुआ करें'' मैं बोला, ''मरीज कहां है''

''इस तरफ आइये.''

वृद्धा मुझे एक छोटे से साफ–सुथरे कमरे में ले गयी, कमरे के कोने में लैम्प जल रहा था, बिस्तर पर कोई बीस वर्षीय लड़की अचेतन अवस्था में लेटी हुई थी. उसका बदन तप रहा था और सांस तेजी से चल रही थी. उसे तेज बुखार था. वहीं उसकी दो बहनें भी थी. सहमी और रोती हुई. उन्होंने बताया कि कल तक वह बिल्कुल ठीक थी. खाना भी ठीक खाया. पर आज सुबह ही सिर में तकलीफ बतायी और अचानक हालत इतनी बिगड़ गई.

मैंने फिर कहा, ''परेशान मत हों, बस प्रार्थना करो.'' मैं उसके करीब गया, जांच की और राई का लेप लगाने के लिए कहा. एक मिक्स्चर भी दिया.

इस बीच मैंने उसके चेहरे पर नजर डाली तो देखता ही रह गया. ऐसा अनुपम सौंदर्य मैंने पहले कभी नहीं देखा. ऐसी सुन्दर आंखे, तीखे नैन–नक्श!

मुझे अपने पर झेंप आयी. शुक्र है खुदा का थोड़ी देर बाद उसकी तबीयत संभलने लगी. पसीना आने से होश आ रहा था. बहनों ने उसके ऊपर झुक कर पूछा, ''तुम कैसी हो.''

उसने चारों तरफ देखा, मुस्करायी और बोली, ''ठीक हूं'' फिर उसने करवट बदल ली.

मैंने देखा. वह सो गयी थी. अच्छा ही है. मैंने सबसे कहा, ''अब मरीज को अकेला छोड़ देना चाहिए.''

हम लोग दबे पांव बाहर निकल आए. केवल एक नौकरानी को वहां बैठने के लिए कहा, शायद मरीज को जरूरत पड़े.

बैठक में मेज पर एक 'समोवार' (रूसी चाय का बर्तन) रखा था और एक रम की बोतल. हमारे पेशे में इसके बिना काम नहीं चल सकता. उन्होंने मुझे चाय दी और रात वहीं रुक जाने की गुजारिश की. यूं भी इतनी रात गये कहां जाऊंगा यह सोचकर मैं रुक गया. वृद्धा ने फिर जानना चाहा कि उसकी बेटी को क्या तकलीफ हैं? मैंने कहा–''आप चिन्ता न करें, वह ठीक हो जाएगी. आप भी आराम करें तो अच्छा है. रात के दो बज चुके हैं. मैं भी सोता हूं, कोई जरूरत हो तो मुझे जगा दें.''

''ठीक है,'' कह वह वृद्धा तथा लड़कियां सोने चली गयीं. मेरा बिस्तर बैठक में लगाया गया था. मैं सोने तो गया पर सो नहीं सका, हालांकि मैं बहुत थका हुआ था. दरअसल मैं अपने मरीज को अपने दिमाग से हटा नहीं पा रहा था. मैं अचानक उठ गया; सोचा जाकर देखूं मरीज कैसी है. उसका कमरा मेरे कमरे के साथ लगा हुआ था. मैंने धीरे से दरवाजा खोला, देखा नौकरानी सो रही थी, उसका मुंह खुला था और वह दुष्ट खर्राटे भी ले रही थी. मरीज लेटी थी. उसका चेहरा दरवाजे की ओर था, बांहें पसरी हुई थीं. बेचारी! जैसे ही मैं उसके करीब गया, उसने अचानक आंखें खोलकर मुझे देखा और पूछा, ''कौन है? कौन हैं आप?''

मैं असमंजस में था, ''डरिए नहीं, मैं आपका डॉक्टर हूं, आपको देखने आया हूं कि अब आप कैसी हैं.''

''आप डॉक्टर हैं?''

''हां, मैं डॉक्टर हूं. आपकी मां ने मुझे शहर से बुलाया है. मैंने आपकी जांच की है, अब आप आराम करें. ईश्वर की कृपा से दो–एक दिन में अच्छी हो जाएंगी.

''हां डॉक्टर, मेहरबानी करके मुझे मरने मत दीजिए.''

''आप ऐसी बात क्यों करती हैं? भगवान आपको लम्बी उम्र दें.'' मैंने कहा पर मन ही मन सोचा क्या उसे फिर से बुखार आ रहा है. नब्ज देखी तो वाकई उसे बुखार था. उसने मेरी ओर देखा और मेरा हाथ थाम लिया. ''मैं आपको बताऊंगी कि मैं क्यों

मरना नहीं चाहती, मैं बताऊंगी, जरूर बताऊंगी. इस समय हम दोनों ही है. मेहरबानी करके आप यह बात किसी को बताइएगा नहीं.''

''सुनिये'' मैं उसके करीब झुक गया. उसने होंठ मेरे कान से सटा लिये. उसके बाल मेरे गालों को छू रहे थे. मैं कबूल करता हूं कि मेरा सिर घूमने लगा. उसने धीमे-धीमे कहना शुरू किया. मैं कुछ भी समझ नहीं पा रहा था. वह अपनी रौ में बोलती जा रही थी. इतने फर्राटे से कि मुझे लगा कि वह रूसी नहीं बोल रही है. आखिर उसने अपनी बात पूरी की. कांपते हुए उसने अपना सिर तकिए में छुपा लिया. फिर ऊंगली के इशारे से ताकीद करते हुए कहा कि खबरदार गर किसी को बताया तो. मैंने किसी तरह उसे शांत किया. कुछ पीने के लिए दिया और नौकरानी को जगाकर मैं बाहर निकल आया.

इतना कह डॉक्टर रुका और फिर से नसवार ली. लगा जैसे उसके असर से डॉक्टर पर बेसुधी छा रही है.

उसने फिर बात आगे बढ़ायी. ''अगले दिन पूरी उम्मीद होते हुए भी उसकी तबीयत में कोई सुधार नहीं हुआ. काफी सोच-विचार के बाद मैंने वहीं रुकने का निश्चय किया. हालांकि मेरे दूसरे मरीज मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे. आमतौर कोई डॉक्टर ऐसा नहीं करता और यदि करता है तो उसकी प्रैक्टिस पर बुरा असर पड़ता है. लेकिन यहां मरीज खतरे में थी और सच कहूं तो मैं उसकी तरफ आकर्षित हो गया था. यूं देखा जाए तो मुझे पूरा परिवार ही भा गया था. हालांकि वे गरीब थे पर काफी संस्कारी और सुलझे लोग थे. उनका पिता एक विद्वान लेखक था, जिनका अभावों के चलते निधन हो गया. पर मरने से पहले वे अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिला गये थे. घर में उनकी ढेर सारी किताबें भी थीं. मरीज का ख्याल रखने या किसी और वजह से घर के सभी लोग मुझे अपने परिवार के सदस्य जैसा ही प्यार दे रहे थे. इस बीच शहर की सड़कें खराब होने के कारण सारे सम्पर्क टूट चुके थे. यहां तक कि दवाइयां मंगाना भी मुश्किल हो रहा था. दिन-पर-दिन गुजरते जा रहे थे पर लड़की की हालत में कोई खास सुधार नहीं हो रहा था, यहां...(डॉक्टर रुक गया) मैं मानता हूं कि मुझे बताने में संकोच हो रहा है...(उसने फिर नसवार ली, खंखारा और एक घूंट चाय पी). हां तो समय जाया न करते हुए मैं सीधे अपनी बात पर आता हूं.

''मेरी मरीज...कैसे कहूं...हां वह मुझे प्यार करने लगी थी. नहीं...नहीं कैसे कहा जाए.'' (डॉक्टर ने चेहरा झुका लिया जो सुर्ख हो गया था) ''नहीं'' कह वह जल्दी-जल्दी बोलने लगा, ''दरअसल प्रेम में व्यक्ति को खुद को ज्यादा नहीं आंकना चाहिए. वह एक पढ़ी-लिखी, समझदार लड़की थी, उसके चक्कर में मैं अपनी लैटिन भी पूरी तरह भूल बैठा था. जहां तक मेरी शक्ल-सूरत का सवाल है (डॉक्टर ने मुस्कराते हुए खुद को देखा) मुझमें इतराने जैसी कोई बात नहीं है. पर ईश्वर ने मुझे उतना भी मूर्ख नहीं बनाया है कि कुछ न जानूं. सफेद व काले का भेद करना मैं बखूबी जानता हूं. मुझे साफ दिख रहा था कि अलेक्संद्रा अंद्रेयवना-उसका यही नाम था-का मेरे प्रति प्रेम नहीं था, शायद यह दोस्ताना लगाव था-वह मेरी इज्जत करती थी या ऐसा ही कुछ था, पर शायद वह खुद भी अपनी भावनाओं को समझ नहीं पा रही थी. उसके बर्ताव से तो यही लगता था. खैर आप इस बारे में अपनी समझ से राय बना सकते हैं.'' डॉक्टर जो बिना रुके एक ही सांस में ऐसे आधे-अधूरे वाक्य बोलता रहा था, उसकी बातों में झिझक साफ नजर आ रही थी, अचानक बोला ''इस तरह शायद आपको कुछ समझ नहीं आए, इसलिए अब मैं सारी बात सिलेसिलेवार ढंग से बयान करता हूं.'' चाय का कप खाली करने के बाद उसने शांत स्वर में फिर बताना शुरू किया.

''हां तो मेरी मरीज की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही थी. आप डॉक्टर नहीं है अतः शायद आप डॉक्टर की हालत का अंदाजा नहीं लगा सकते, खासकर जब उसे लगने लगता है कि रोग उसके काबू से बाहर होता जा रहा है. उसका खुद पर से भरोसा उठने लगता है और वह इस कदर कातर हो जाता है कि इसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता. आप कल्पना करने लगते हैं कि आप अपना सारा ज्ञान भुला बैठे हैं और मरीज का आप पर से विश्वास उठ गया है. और यह कि तमाम दूसरे लोग भी आपकी इस घबराहट और बेध्यानी को ताड़ गये हैं और इसलिए मर्ज के लक्षणों को अनमनेपन से बता रहे हैं, वे आपको संदेह की निगाह से देखते है और कानाफूसी करते हैं. ओह यह वाकई यातनादायी होता है. आप सोचते हैं इस मर्ज की तो दवा होगी, बस बात उसे ढूंढने की है. आप उन्हें इस्तेमाल करते हैं पर पहली दवा का असर होने का इंतजार किये बगैर ही दूसरी देकर देखना चाहते हैं. फिर चिकित्सा की किताबों में नया नुस्खा ढूंढ़ते हैं. हां मिल गयी आप सोचते हैं. कभी-कभार कोई दवा भाग्य के भरोसे आजमाना चाहते हैं इस बीच आपका मरीज मृत्यु से जूझता है. आप सोचते हैं कि शायद कोई दूसरा डॉक्टर इसकी जान बचा सके, इस आशा में आप उससे सलाह करना चाहते हैं.'' शायद आपके जेहन में कहीं यह ख्याल होता है कि मैं अकेला ही इसकी जिम्मेदारी क्यों लूं. ऐसे वक्त आप निरे बेवकूफ दिखते हैं. आपकी स्थिति अजीब हो जाती हैं. फिर धीरे-धीरे आप इसके आदी हो जाते हैं. कोई मर जाता है...तो आप खुद को समझाते हैं कि आपने तो चिकित्सा विज्ञान में उपलब्ध हर संभव इलाज किया फिर भी यदि वह नहीं बच सका तो इसमें

आपका क्या दोष? पर इससे भी बड़ी यातना तो तब होती है जब आप देखते हैं कि मरीज के सगे–संबंधियों का आप पर अटूट विश्वास है और आप कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं.

यहां भी अलेक्संद्रा अंद्रेयवना के परिवार का मुझमें ऐसा ही अंधविश्वास था. उसे मेरे हाथों में सौंप कर वे भूल ही चुके थे कि उनकी लड़की का जीवन खतरे में है, मैं भी उन्हें दिलासा देता रहता था कि चिंता की कोई बात नहीं है पर मेरा अपना दिल बैठने लगा था. दूसरी बड़ी परेशानी यह थी कि सड़कें खराब होने के कारण कोचवान को दवाइयां आदि लाने में पूरा–पूरा दिन लग जाता था. मैं मरीज के पास दिन भर बना रहता था. उसे खुश रखने के लिए कहानियां सुनाता या ताश खेलता था.

रात भी जागकर उसकी देखभाल करता था, उसकी बूढ़ी मां अश्रूपूर्ण नेत्रों से मेरा धन्यवाद करती. पर मैं मन ही मन सोचता कि मैं उसकी कृतज्ञता लायक नहीं हूं. मुझे यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि मैं अपनी मरीज को चाहने लगा था और वह भी मुझे पसंद करती थी. कभी–कभी तो वह जिद् करती कि उसके कमरे में मेरे सिवाय कोई भी न रहे. वह खुलकर बातें करने लगी थी, वह मेरी पढ़ाई–लिखाई, मेरे रहन–सहन, मेरे घर–बार, संगी–साथियों, आदि के बारे में पूछती रहती थी. मुझे लगता कि उसे ज्यादा नहीं बोलना चाहिए पर उसे बोलने से रोकना मेरे बस में नहीं था. अक्सर मैं अपना सिर थाम कर अपने आप से सवाल करता कि यह तुम क्या कर रहे हो...एक विलेन का ही काम कर रहे हो. वह मेरा हाथ अपने हाथों में थामकर देर तक निहारती रहती. फिर शर्माकर मुंह फिरा लेती और कहती–''तुम कितने अच्छे और भले हो, हमारे पड़ोसियों की तरह नहीं,'' उसके हाथ बुखार से तपते रहते और आंखें बड़ी और निस्तेज हो गयी थीं. ''अफसोस कि मैं आपसे पहले क्यों नहीं मिली'' मैं उसे शांत करने की कोशिश करता. इसी प्रसंग में डॉक्टर ने बताया कि उसके पड़ोसी अमीर थे और उनके साथ उस परिवार का मेलजोल बहुत कम था. दरअसल उसका परिवार बहुत सुसंस्कृत एवं सभ्य था. मेरा उनसे संबंध बनना मेरा सौभाग्य था...वह दवाइयां मेरे हाथ से ही लेती थी. मेरी सहायता लेकर ही वह उठती. मुझे एकटक निहारती, उसकी हालत देख मुझे बहुत दुःख होता, मेरा दिल छलनी होने लगता. मैं जानता था वह नहीं बचेगी; उसकी मां एवं बहनें भी मेरी आंखों में झांककर असलियत जानने का प्रयास करतीं. उनका विश्वास मुझमें कम हो रहा था. पर जब भी वे पूछती मैं यहीं कहता कि सब ठीक हैं. मेरा दिमाग काम नहीं कर रहा था. एक रात मैं मरीज के साथ अकेला बैठा था. नौकरानी भी वहीं थी पर वह खर्राटे ले रही थी, वह बेचारी भी थक जाती थी. अलेक्संद्रा पूरी शाम बेचैनी महसूस कर रही थी, बदन बुखार में तप रहा था. आधी रात तक वह करवट बदलती रही. आखिरकार बड़ी देर बाद ऐसा लगा कि उसे नींद आ गयी या शायद वह यूं ही चुपचाप लेट गयी थी. कमरे के कोने में ईश्वर की प्रतिमा के पास लैम्प जल रहा था. मैं बैठकर ऊंघ रहा था. अचानक किसी के स्पर्श से मैं चौंक पड़ा. देखा तो अलेक्संद्रा अंद्रेयवना उत्सुकता से मुझे एकटक देखे जा रही थी. गाल तप रहे थे, उसके होंठ हिले और उसने पूछा–'' डॉक्टर क्या मैं मर जाऊंगी, नहीं डॉक्टर मुझे दिलासा मत देना, अगर बता सकते हो तो मुझे असलियत बताओ. मुझसे मेरी हालत मत छुपाओ.'' उसकी सांस बड़ी तेजी से चल रही थी. ''यदि मेरा मरना तय है तो मैं आपको सब कुछ बताना चाहती हूं–सब कुछ.''

''अलेक्संद्रा अंद्रेयवना प्लीज मेरी बात सुनो'' मैंने बोलना चाहा पर उसने एक नहीं सुनी.

''सुनो मैं बिल्कुल नहीं सोयी हूं बहुत देर से आपको ही निहार रही थी. आप बहुत अच्छे और ईमानदार हैं. आपके लिए आपको ईश्वर की सौंगध मेहरबानी कर मुझे सच बताओ. आप नहीं जानते कि यह जानना मेरे लिए कितना मायने रखता है...खुदा के वास्ते...मुझे बताइये कि क्या मेरी जान खतरे में है.''

''अलेक्संद्रा तुम्हें मैं क्या बताऊं, बस प्रार्थना करो, मैं तुमसे कुछ भी छिपा नहीं सकता. सच यही है कि तुम्हारा जीवन खतरे में है, पर भगवान पर भरोसा रखो, वह बड़ा दयालु है.''

पर यह क्या! यह सुनते ही वह उछलने लगी और खुश होकर चिल्लाने लगी ''मैं मरने वाली हूं, मैं मरने वाली हूं'' उसके चेहरे पर अजीब सी चमक आ गयी थी, मैं भौंचक्का सा उसे देखता रहा. उसे रोकता उससे पहले ही बोली. ''मैं मरने से बिल्कुल नहीं डरती'' इतना कह वह अचानक कुहनी के बल बैठ गयी और बोली ''हां अब मैं तुम्हें बता सकती हूं कि...मैं तहेदिल से तुम्हारी शुक्रगुजार हूं, क्योंकि तुम दयालु और अच्छे इंसान हो. इसलिए मैं तुम्हें प्यार करती हूं.''

मैं उसे यूं देखता रह गया जैसे मैं बुत बन गया हूं...तुम्हें मैं बता नहीं सकता मेरे लिए यह वाकई आश्चर्यजनक था.

''तुमने सुना मैं तुम्हें प्यार करती हूं.'' उसने फिर कहा.

''अलेक्संद्रा अंद्रेयवना मैं इसके लायक नहीं हूं.''

''नहीं, नहीं तुम मुझे नहीं समझते'' कहकर उसने मेरा ललाट अपने हाथों में लेकर चूम लिया. यकीन करें मैं लगभग चीख पड़ा, घुटनों के बल लेट गया और अपना सिर तकिए में छुपा लिया. वह भी कुछ नहीं बोली, अपनी उंगलियां मेरे बालों में फिराती रही. फिर लगा, वह रो रही थी. मैं उसे शांत कर तसल्ली देने लगा...मुझे सचमुच याद नहीं मैंने उससे क्या कहा. पर मुझे लगा वह नौकरानी जाग जाए जाएगी सो मैंने कहा, ''तुम उसे जगा दोगी. अलेक्संद्रा अंद्रेयवना...धन्यवाद...मेरी बात मानो... चुप हो जाओ, बहुत हो चुका''...पर उसने कहना जारी रखा.

''उन सबकी परवाह मत करो, जागते हैं तो जाग जाने दो, यहां भी आ जाने दो... मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता, मैं मर रही हूं और तुम...तुम्हें किस बात का डर है, तुम किससे डर रहे हो, तुम अपना सिर ऊपर उठाओ...या शायद तुम मुझसे प्यार नहीं करते, शायद मैं गलत हूं...ऐसी बात हो तो मुझे माफ कर देना.''

''अलेक्संद्रा अंद्रेयवना...क्या कह रही हो तुम...मैं तुम्हें प्यार करता हूं.'' उसने सीधे मेरी आंखों में झांका और अपनी बांहें फैला दी—''तो मुझे अपनी बांहों में ले लो.''

''मैं सच कहता हूं, मैं नहीं जानता कि ऐसा कैसे हुआ कि मैं उस रात पागल नहीं हो गया. मुझे लगा कि मेरी मरीज खुद अपनी जान लेने पर उतारू है, मैं समझ रहा था कि वह अपने आपे से बाहर थी. यकीकन गर वह मृत्यु के कगार पर नहीं होती तो मेरे बारे में ऐसा ख्याल भी कभी उसे नहीं आता और चाहे आप कुछ भी कहें, सच तो यह है कि बीस साल की उम्र में यह जाने बिना मर जाना कि प्रेम होता क्या है, वाकई मुश्किल है, यही बात थी, जो उसकी वेदना का सबब थी, इसी वजह से घोर निराशा में उसने मुझे पकड़ा. अब आप समझ गये होंगे? लेकिन उसने मुझे अपनी बांहों में बांधे रखा और जाने नहीं दिया. मैं बोलता ही रहा ''अलेक्संद्रा अद्रेयवना, मुझ पर और अपने आप पर दया करो''

''क्यों'' वह बोली. ''अब सोचना क्या है, तुम जानते हो मुझे मर जाना है'' यही बात वह बार–बार दोहराती रही...अगर मुझे मालूम होता कि किसी भी नवयौवना की तरह मुझे जीवित रहकर सामान्य जीवन जीना है तो मैं अपने किये पर शर्मिंदा होती...सचमुच लज्जित महसूस करती...लेकिन अब क्यों.''

''पर किसने कहा तुम मर जाओगी''

''रहने भी दो. तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते, तुम्हें झूठ बोलना आता ही नहीं है,...जरा अपना चेहरा देखो.''

''तुम जिन्दा रहोगी अलेक्संद्रा, मैं तुम्हारा इलाज करूंगा, हम तुम्हारी मां का आशीर्वाद लेंगे, फिर हम एक हो जाएंगे और खुश रहेंगे.

''नहीं, नहीं तुमने वचन दिया था. मेरा मरना तय है, तुमने मुझसे वादा किया है. तुमने मुझसे कहा है...यह मेरे लिए कितना क्रूर था, कई कारणों से क्रूर. और देखो न कई बार मामूली चीजें क्या कुछ कर डालती हैं, यह कितना बेमानी लगता है, पर कितना तकलीफदेह. अचानक उसके मन में आया कि वह मेरा नाम पूछे, मेरा सरनेम नहीं मेरा नाम. मैं शायद अभागा हूं कि मेरा नाम ट्राईफन है, हां ट्राईफन इवानिच. घर में सब मुझे डॉक्टर ही कहते थे. हालांकि इसके लिए क्या किया जा सकता है. मैंने कहा ''ट्राईफन, मैडम'' उसने त्यौरियां चढ़ाईं, सिर हिलाया और फ्रेंच में कुछ कहा, कुछ ऐसा जो वाकई अप्रिय था.

अटपटा भी और फिर वह हंस पड़ी...मैंने उसके साथ इसी तरह सारी रात गुजारी. सुबह होने से पहले मैं चला आया, मुझे लग रहा था जैसे मैं पगला गया हूं. सुबह की चाय के बाद मैं दोबारा उसके कमरे में गया तो दिन चढ़ आया था. हे भगवान! मैं बड़ी मुश्किल से उसे पहचान सका, लोग अपनी कब्र में लेटे हुए भी इससे बेहतर लगते हैं. मैं कसम खाकर कहता हूं, मैं नहीं जानता, बिल्कुल नहीं जानता कि उस अनुभव से गुजर कर भी मैं कैसे जिन्दा रहा. तीन दिन और तीन रातों तक मेरी मरीज जिंदगी और मौत से जूझती रही. वे रातें कैसी यातनादायी थीं. उसने क्या–क्या मुझसे नहीं कहा और आखिरी रात...आप जरा खुद कल्पना कीजिए. मैं उसके पास बैठा भगवान से केवल एक ही प्रार्थना करता रहा. ''हे ईश्वर उसे उठा लो, जल्दी और साथ में मुझे भी.'' अचानक उसकी मां कमरे में आ गयीं.

पिछली शाम मैं उन्हें बता चुका था कि उम्मीद कम है और किसी पादरी को बुला लेना चाहिए. बीमार लड़की ने मां को देखा तो बोलीः

''अच्छा हुआ तुम आ गयीं, देखो हम एक–दूसरे से प्यार करते हैं...हमने एक–दूसरे को वचन दिया है.''

''डॉक्टर यह क्या कह रही है, क्या कह रही है यह!''

मेरा चेहरा पीला पड़ गया. मैंने कहा बुखार की वजह से बड़बड़ा रही है.

लेकिन वह बोली ''चुप, चुप, तुमने अभी मुझसे कुछ और कहा था और मेरी अंगूठी ली थी, तुम अब बन क्यों रहे हो, मेरी मां बहुत अच्छी हैं...वह माफ कर देगी...वह सब समझ जाएगी कि मैं, मर रही हूं...मुझे झूठ बोलने की जरूरत नहीं हैं, मुझे अपना हाथ दो.''

मैं उठकर खड़ा हो गया और कमरे से बाहर निकल गया. वृद्धा शायद समझ गयी होगी कि ऐसा क्यों हुआ.

''खैर, अब मैं तुम्हें और परेशान नहीं करूंगा और सच तो यह है कि खुद मेरे लिए भी उस सबको याद करना बेहद यातनादायी है. अगले दिन मेरी मरीज चल बसी. ईश्वर उसकी रूह को सुकून बख्शे.'' डॉक्टर ने गहरी सांस ली और जल्दी से बोलते हुए यह भी बताया कि ''मरने से पहले उसने अपने परिवार को बाहर जाने और मुझे उसके साथ अकेला छोड़ने के लिए कहा.''

''मुझे माफ कर दें,'' वह बोली, ''मैं तुम्हारी गुनाहगार हूं...मेरी बीमारी... पर यकीन जानिए मैंने अपने जीवन में तुमसे ज्यादा और किसी को नहीं चाहा...मुझे भुला मत देना...लो, मेरी यह अंगूठी अपने पास रखो.'' यह कह डॉक्टर ने अपना मुंह घुमा लिया, मैंने उसका हाथ पकड़ लिया.

खैर छोड़ो! चलो हम कुछ और बात करें. क्या तुम प्रिफरेंस खेलना चाहोगे, हम छोटे दांव ही लगाएंगे. मेरे जैसे लोगों को अपनी उदात्त भावनाओं को इस तरह जाहिर नहीं करना चाहिए. मेरे पास सोचने के लिए सिर्फ एक ही चीज है वह यह कि बच्चों को रोने से और बीवी को फटकारने से कैसे रोकूं. उसके बाद मेरे पास कानूनी तौर पर विवाह करने के लिए बहुत वक्त रहा...मैंने एक व्यापारी की बेटी के साथ विवाह कर लिया...दहेज में सात हजार लेकर. उसका नाम अकूलिना है जो ट्राईफन के साथ ठीक भी बैठता है. वह एक दिन बदमिजाज औरत है लेकिन गनीमत है कि दिन भर सोती रहती है.

''तो खेलें प्रिफरेंस''

हम आधे पैनी पाउंड का दांव लगाने बैठ गये. ट्राईफन ईवानविच ने खेल में ढाई रूबल जीते और अपनी इस सफलता की खुशी में देर से घर गया.

❑❑

गजल

मोह. मुइनुद्दीन 'अतहर'

तू नहीं तो जिन्दगानी का नशा कुछ भी नहीं.
ये सुहानी शाम ये रंगी फजा कुछ भी नहीं.

हूं तसव्वुर के बयाबां में भटकता रात-दिन,
सर पे गम का आसमां इस के सिवा कुछ भी नहीं.

मैं गमों की भीड़ में गुम हो गया हूं इस तरह,
मेरी सांसें गुमशुदा मेरा पता कुछ भी नहीं.

दर्दे-दिल, दर्दे-जिगर, बेख्वानियां, तनहाइयां,
है अगर ये इश्क तो इसकी दवा कुछ भी नहीं.

हम तो बस आंखों ही आंखों में उन्हें पढ़ते रहे,
आंखों ने सब कुछ कहा, उसने सुना कुछ भी नहीं.

आंधियों में उड़ गये यूं आशियाने इश्क के,
खेल है किस्मत का ये इसके सिवा कुछ भी नहीं.

हैं सभी हैरतजदां 'अतहर' तेरी परवाज पर,
है ये बस उनकी अदा, मेरी अदा कुछ भी नहीं.

संपर्कः सम्पादक/प्रकाशक 'ल्घुकथा अभिव्यक्ति'
1308, अजीजगंज, पसियाना, शास्त्री वार्ड,
जबलपुर–482002 (म.प्र.)

❑

मंदिर का घंटा

ति. जानकीरामन

खाना तैयार हो गया. बस सांवार में, आटे का घोल मिलाकर करछुल से दो बार चला दिया. मुट्ठी भर हरा धनिया काटकर डाल दिया. दो उबाल के बाद उतार कर राई की छौंक लगा दी. पालक का साग तो पहले ही तैयार था.

'पत्तल काट लिए?' उन्होंने पिछवाड़े की ओर देखकर आवाज लगाई.

'हां, हां तैयार है.' उनकी पत्नी ने हंसिये को पलट कर पत्तलों का गट्ठर उनकी ओर बढ़ा दिया. गीले हाथों को आंचल से पोंछकर बच्चों को उठा लिया और दूध पिलाने लगी.

मार्गम ने कुएं से पानी निकालकर सारी गंदगी धो डाली. पसीने में चिपचिपाते चेहरे पर पानी के छींटे मारे. विभूति लगाकर संध्या वंदन के लिए बैठ गये. फिर बैठक में आकर दालान के पास बैठ गये और गायत्री जाप करने लगे. शुक्र तारा उग आया था. दालान में बंधी बछिया जीभ लपलपाती उनकी ओर फुदकने लगी. बंधी थी इसलिए पास नहीं आ पायी. गोबर और गो मूत्र की मिली-जुली गंध, शुक्रतारे का एकांत और गोधूली की बेला, उन्हें लगा वे किसी आश्रम में बैठे हैं. बायें हाथ में उंगली से गिनते हुए वे जाप करते रहे. बीच-बीच में आंखें मुंद जातीं. सहसा गलियारे में चप्पल उतारने की मरमराहट हुई. मार्गम ने दरवाजा खोल दिया.

'आइए.'

'खाना...' आगन्तुक ठिठके.

'बिल्कुल तैयार है. उन्होंने जाप पूरा किया और बैठक में पाटला लगा दिया. आगन्तुक शायद भूखे थे. यूं तो वे रोज आने वालों में नहीं थे, कभी-कभार माह-दो माह में आ जाते. बस इतना ही परिचय था. सन्निधि वाली गली में रहते हैं. यहां गांव के उच्च माध्यमिक पाठशाला के विज्ञान अध्यापक के सहायक हैं. उनकी आकृति पर तरस आता. मोटा और नाटा कद, गोल चेहरा, गंजा सिर. पिछले हिस्से में चार-पांच सफेद बाल चिपके थे. चांदी के फ्रेम का चश्मा. बायीं आंख शीशे के पीछे से कुछ बड़ी लगती. खद्दर की खाकी कमीज. चलते तो लगता जैसे कोई बच्चा ठुमक कर चल रहा है. ऊपर की ओर देखते हुए कदम पर कदम चलते. विज्ञान का कक्ष गली पर पड़ता था. वे खिड़की के पास आकर बैठकर गली की ओर देखते रहते. मार्गम जब भी उनको देखते,

जाने क्यों उन पर तरस आ जाता.

तभी न, माह दो माह में जब भी वे खाने आते, तो मार्गम को लगता जैसे जड़भरत या कोई अवधूत ही चला आया. पूरी श्रद्धा के साथ खाना परोसते. गली से गुजरने वाले अक्सर करछुल की आवाज से अंदाज लगाते कि मार्गम खुले हाथों परोंसते हैं. पर जब तक कोई भीतर आकर नहीं देखता सच का पता भी नहीं चल पाता. मार्गम खुले हाथों परोसते हैं. मार्गम कलई लगे चमचमाती पीतल की परात में चावल लाते. परात बीचों–बीच थोड़ा पिचक गया था. यह उनकी अपनी सूझ थी. वे परात लिए बैठक में आते. करछुल तेजी से बजाते हुए परोसते. पर उन्हें यकीन था कि चावल पत्तल में उतना ही पड़ेगा जितना वे परोसना चाहते हैं. दाल हो, घी या सब्जी हो, सब उनकी इच्छा से ही परोसे जाते. करछुल इस तरह खटखटाते मार्गम ने रास्ता सोच लिया था. ऐसों को वे करछुल के डंडी वाले भाग से परोसते. घी दो या अचार. होटल का खाना थोड़े ही है. घर का खाना है, एकदम परहेजी! इसलिए खाने में भी अनुशासन जरूरी है न!

पर मार्गम अपनी सूझ–बूझ का प्रयोग इन पर नहीं करते. इस बात का पता तो शायद उनकी परात और करछुल को भी था, तभी न वे बे आवाज अपना काम करते.

आगन्तुक ने खूब चखकर खाया. सांवार उन्हें बहुत पसंद आया. इसलिए दही चावल के लिए भी मांग लिया. मार्गम ने थोड़ा परोस दिया. दोबारा चौके में लौटकर यूं ही सांवार को चला दिया, तो करछुल में लम्बी–सी कोई चीज फिसलकर सांवार में गिर गयी. दोबारा चलाकर करछुल को रोशनी में लाकर देखा. क्या है यह? लम्बा लिजलिजा कुछ तला हुआ. सांप का बच्चा है या गिरगिट, पर गिरगिट के तो पैर होते हैं, उसके नहीं हैं, तो यह सांप का बच्चा ही है.

आकाश में जब मेघ भागता हुआ गुजरता है तो पृथ्वी पर पड़ने वाली छांह भी दौड़ती हुई गुजर जाती है. ठीक उसी तरह, जाने कैसी छांह नीचे से ऊपर तक फैली गयी. छांह! हां, क्या कहा जाय उस एहसास को, यही चिन्ता? क्या कहें उसे? बस छांह जैसी ही तो. पत्नी को इशारे से बुलाया. करछुल दिखाई. देखते ही उसकी आंखें फैल गयीं. सांसें लेकर हांफने लगी. घबराते हुए उसने खम्भे का सहारा लिया.

निःसंदेह सांप का ही बच्चा था.

बूढ़े ने खाकर हाथ धो लिया. एक लम्बी डकार ली और चप्पल पहनकर बाहर निकल गये. अगले ही क्षण करछुल हाथ में लिए घुप्प अंधेरे में ही पिछवाड़े के छोर तक चले गये. कूड़े के गड्ढे में उसे डाल दिया. ऊपर से ढेर–सा कूड़ा फैला दिया. भीतर आयी और सांवार नाली में गिरा दिया.

'कुछ हो तो नहीं जायेगा?' उसने पूछा. उसकी आवाज भी नहीं निकल रही थी.

'भगवान पर भरोसा रखो!' मार्गम का स्वर रुआंसा हो आया. जाने क्या–क्या याद आने लग गया. कभी हथकड़ी तो कभी जेल. कभी शाप. उनके हाथ कांपने लगे.

'चल, भगवान से मिन्नत कर लेते हैं!'

दोनों आले के पास आकर खड़े हो गये.

'हे प्रभु, अब तक तो इतने सम्मान से जी लिए. अब यह कैसी परीक्षा ले रहे हो प्रभु!' वह रो पड़ी.

मार्गम ने तुरंत मनौती गांठ ली, 'पांच धातुओं में बना घंटा बनवा देता हूं. हाथ भर लंबा. बस इतनी दया कर दो कि बात न फैले.'

पत्नी ने सुना तो बोली, 'हे भगवान, बस किसी को कानों–कान भनक तक न पड़े. घंटा बंधवा देंगे तेरे धाम में. हे भगवान, युगेश्वर, सर्वेश्वर, हे मार्ग–बंधु!'

बोलती–बोलती रुक गयी. जीभ काट लिया. हाय राम, कहां पति का नाम ले लिया. लज्जा से चेहरा लाल हो गया.

सांवार दोबारा बनाया गया. वही सांवार. चौबीस ग्राहक थे, सब खा गए. लाख प्रार्थना कर लो, पर संदेह और भय का भूत पीछा भी तो नहीं छोड़ता था. रात भर दोनों सो नहीं पाये. पत्नी तो भगवान को सब कुछ सौंपकर थोड़ी देर बाद पसर गयी.

मार्गम करवटें लेते रहे. उन्हें बार–बार ख्याल आता रहा. लगता एक बार सन्निधि वाली गली में जाकर देख तो आएं. किस पाप की सजा है यह लापरवाही. कहीं भूखों की आह तो नहीं लग गयी. उस दिन बेबु अय्यर के बेटे यहां चुगने आये हैं. अरे जितना पैसा देते हैं, उतना तो हजम करना है न. पेट भला कोई दीवार तो नहीं कि पुताई कर दो और छुट्टी. कहीं यह उसकी आह तो नहीं.

सुबह खबर आयी कि विज्ञान अध्यापक के सहायक का देहान्त हो गया. रात दो बार पिछवाड़े हो आये थे. पानी पिया और लेट गये. लेटे तो बस उठे नहीं. डॉक्टर ने कहा कि उन्हें दिल का दौरा पड़ गया था. दुनिया यही कहती रही. यूं दुनिया भर के अपराधों के पीछे छिपे कारणों और उनके कर्त्ताओं की खोज होने लगे तो बस सारे घर जेल में बदल जायेंगे. चलो, उस युगेश्वर ने लाज तो रख ली.

घंटा एक माह में ही तैयार हो गया. पंचधातु का था, या जाने क्या. डेढ़ हाथ ऊंचा. भारी इतना कि दो आदमी उठाने को चाहिए. देखने में भी कितना भव्य लगता था. उसका स्वर बेहद मीठा और गुरु गम्भीर. बनाने वाला भी तो सामान्य नहीं था. बैद्यलिंग आचार्य का बनाया हुआ था. पता नहीं अपना पूरा कौशल

उतार दिया था उसमें. आचारी के आदमी आंगन में रखकर चले गये.

मार्गम ने देखा आंखें हटती न थीं. कभी नंदी सा लगता तो कभी आंध्र की गठे हुए बदन वाली सुन्दरी की तरह! कभी मंदिर का गोपुर (शिखर). ऊपर सफेद चूने-सा कुछ पोतकर रख दिया था! 'मार्गम बंधु विलास मार्गम बंधु द्वारा बनाया गया.' खुदे अक्षर चमक रहे थे. जिस युगेश्वर ने अपमान से बचाया, मानो उसी का साकार रूप था. युगेश्वर की करुणा का मौन साक्षी था वह.

घंटे में पूरे छह सौ लग गए. इंजीनियर अप्पासामी के प्रति वे मन-ही-मन कृतज्ञ हए. अप्पासामी के घर पूरे पच्चीस साल तक महाराज का काम किया. अन्त में तीन हजार रुपये दिये और उन्हें अपना धंधा शुरू करने की सलाह दी. उनका आशीष भी फल गया. मार्गम ने एक बिटिया की अच्छे खाते-पीते घर में शादी कर दी. लड़के को पढ़ाया. आजकल मदुराई के सिटी बैंक में है. उसके बाद चार-पांच हुए पर कोई नहीं रहा. अब खटोले पर पड़ा छुटका ही शेष है. जहां तक कमाई का सवाल है, बहुत तो नहीं होती पर चलो ईश्वर ने इस अपमान से तो उबार ही लिया. छह सौ तो क्या पूरे छह हजार भी निकल जाते तो कम ही थे.

ग्राहक घंटे को देखते तो आश्चर्य में पड़ जाते. भला कौन इस युग में भगवान की इतनी सेवा करता होगा. चलो, फूल चढ़ा देते हैं, भोग लगा देते हैं, बहुत हुआ तो किसी ने धर्मशाला खुलवा दिया, या चंदन का अभिषेक करवा दिया. पर घंटे की बात भला किसके दिमाग में आती है.

'बस यूं ही मन में सोच लिया और कर डाला.' मार्गम पूछने वालों की जिज्ञासा शान्त करते.

लोगों ने उसे छूकर देखा, चुटकी बजाकर देखा, किसी ने सरकाने की कोशिश की.

'कितना भव्य लगता है.' वे देखते ही रहते.

'इतना बड़ा धर्म काज. अचानक कैसे सूझ गया?'

'भगवान हमारी रक्षा करते हैं, तो क्या हम इतना भी नहीं कर सकते. चलता हुआ आदमी बस गिर पड़ा और क्षण भर में खत्म. भगवान तो हमारी पग-पग पर रक्षा करता है, तभी तो हम जीवित हैं. अब यूं ही देखिए किसी ने पीने के लिए पानी मांगा, लाते-लाते प्राण निकल गए. भला बताइए कौन करता है हमारी रक्षा? अब बात चली है तो लगे हाथ मैं भी एक उदाहरण देता हूं. ऐरावतम्, अरे वही, जो विद्यालय में सहायक थे. पिछले दिनों यहां से खाकर गए थे और अगले दिन खत्म. यह तो कहिए डॉक्टर ने कह दिया कि दिल का दौरा पड़ गया वरना लोग क्या कहते? यही न कि मार्गम के यहां खाया था और आदमी अगले पहर नहीं रहा.'

'छिः छिः लोगों की मति थोड़े ही न मारी गयी है.'

'ठीक है भाई मानता हूं. पर मैं तो सिर्फ एक बात कह रहा हूं.'

'सो तो ठीक है.'

मार्गम को सभी जानते हैं, बस एक बात भर की बात है. समय ही ऐसा है कि हम अनुमान तक नहीं लगा सकते कि कब क्या होने वाला है. ऐरावतम् कभी कभार यहां खाने आ जाते. वे आते तो मेरे जी में धुक लगी रहती. जब तक खाकर नहीं लौट आते, मेरी तो जान सूखती. उनकी हालत तो ऐसी ही थी. ऊपर से बुढ़ापा. मैं तो यही मनाता रहता, कि वे यहां से ठीक-ठाक लौट जायें.'

'सुनते हो, बैठकर बतियाते ही रहोगे कि कुछ चूल्हे की सुध लोगे? चावल गला जा रहा है. उतारना नहीं है क्या?' भीतर से पत्नी का नकियाया स्वर आया.

'अभी आता हूं, भगवान!' मार्गम भीतर गए.

ग्राहक चले गए.

'देखिए एक बात कहे देती हूं. पहले घंटे को मंदिर में रखवा आइए, हां. आप तो बातें ही ऐसी करते हैं मानो किसी दिन कबूल ही लेंगे. मेरी तो जान ही निकली जा रही है.'

'मैंने क्या कहा ऐसा?'

'अरे, अब तक जो भी कहा वही बहुत है. पहले घंटे को जाकर दे आइए. लोग देखते हैं तभी न पूछते हैं, और आपसे भी तो चुप नहीं बैठा जाता.'

'तो क्या तू मुझे मूर्ख समझती है.'

'माना, आप होशियार हैं. पर पहले उसे दे आइए!'

'दिन भी तो देखना पड़ता है.'

'घंटा लटकाने के लिए दिन देखा जाता है, देने के लिए नहीं.'

उसी दिन शाम घंटे को मंदिर में रख आये. दो दिन बाद ही शुक्रवार को उसे लटका भी दिया गया. रस्से में बांधकर मार्गम से ही खींचने को कहा गया.

टन्-टन्-टन्...

गूंज देर तक उठती रही. उनका मन भी उस गूंज के साथ जाने कहां खो गया. उन्होंने आंख मूंद ली. घंटा दोबारा बजा और उन्होंने हड़बड़ाकर आंखें खोल लीं. रस्सा पुजारी के हाथ में था.

प्रातः विश्व रूप दर्शन के लिए उसी घंटे का उपयोग किया जाता. मध्यान्ह को, सांध्यकाल और अर्धरात्रि का पूजन भी इसी घंटे के साथ किया जाता.

प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में जब मार्गम में झंकार सुनी तो आंखें मूंद लीं और खो गए. मध्याह्न में भी यही हुआ. गोधली बेला में वे संध्या-वंदन कर रहे थे. वही अकेला तारा और घंटे का निनाद.

खाना तैयार है. चप्पल की सरसराहट और ऐरावतम् को गुजरे तो डेढ़ माह से ऊपर हो चुके हैं. आखें मूंद ली कस कर. घंटे की आवाज ने जैसे ऐरावतम् को रोक दिया. अब ऐरावतम् खाना नहीं मांगते. समुद्र की लहरों में डूबते-फिरते लकड़ी की तरह लेटे ही लेटे जैसे डूब-तिर रहे हैं. वह ऐरावतम् नहीं उनकी लाश है. समुद्र की लहरें भी कहां? वह तो उबलता हुआ सांवार है.

मार्गम की आंखें फैल गयीं. चौके में जाकर चूल्हे को देखते रहे.

'क्या देख रहे हैं?' पत्नी ने पूछा.

'हूं.'

'तब से देख रही हूं? क्या हो गया तुम्हें?'

'कुछ भी तो नहीं.'

पत्नी पास आयी और उनके चेहरे को ध्यान से देखने लगी.

'क्या देख रहे हैं?'

'कुछ भी तो नहीं.'

'फिर क्या हुआ?' वह भीतर गया और ठाकुर जी के आले से विभूति निकाल लायी. उनके माथे पर लगा दी.

'सुना है, घंटा आपने लगवाया है?' परचून की दुकान के खजांची ने पूछा.

'हां.'

'हे राम! कैसा भव्य नाद है. मैंने तो तिरुवारूर, मलेकोहे के घंटे सुने हैं, पर इसकी तो कोई टक्कर ही नहीं. कैसी सरसराती गूंज है इसकी?'

'सांप की तरह सरसराती है न!' मार्गम ने पूछा.

'हां हां अजगर की तरह गूंज है. भारी और भव्य.'

'तक्षक या वासुकी की तरह?'

'कौन?' खजांची की समझ में नहीं आया.

'वही तक्षक, जिसने परीक्षित को डंसा और वासुकी को तो रस्सी बनाकर देवताओं और असुरों ने समुद्र का मंथन किया था. उसी में हलाहल भी निकला और अमृत भी.'

'हां हां, याद आया. मैं तो भूल ही गया था. तो समझ लीजिए यह गूंज वासुकी नाग की तरह है, बस.'

'मतलब यह हुआ कि दूसरे मंदिरों के घंटे, सांप के बच्चे हैं और यह घंटा अजगर है न.'

'पत्तल परोस दूं.' मार्गम की पत्नी ने भीतर से आवाज दी.

'हां, हां.'

'मैं जरा काम में लगी हूं, आप इधर तो आइए!'

'अभी आया!' वे भीतर गये.

'अच्छे उपमान ढूंढ़ रहे हैं, घंटे के लिए वह भी रात में. अरे इस समय कोई तक्षक या वासुकी का नाम लेता है भला?'

'उन्होंने कहां कहा, यह तो मैं कह रहा था.'

'अच्छा अच्छा, बहुत हो गया बस.'

खजांची चले गये.

रात दस बजे, आधी रात्रि का घंटा. मार्गम लेटे थे. थोड़ी-थोड़ी देर में उठते और बिस्तर को झाड़ लेते.

'सुनती हो, वह आंगन में क्या है?'

'कहां?'

'यहीं आंगन में.'

'कुछ तो नहीं.'

'न, देख लो. हिल रहा है. कंदील तो उठाना जरा.'

कंदील उठाई तो वह गायब.

'देख.'

पत्नी ने देखा. लगा, जैसे कोई चीज रेंगती हुई जा रही है. वह उठी और खम्भे से लटकती रस्सी को खींचकर तोड़ दिया.

'इसी की परछाई है.'

'हे राम! मैं तो घबरा ही गया था.'

वे फिर सो नहीं पाये कंदील की रोशनी तेज की और लेट गये.

पत्नी और बच्चा दोनों आराम से सो रहे थे.

'मां' कहीं गैया रंभाई. तो क्या ब्रह्मबेला हो गयी.

सच वे सोये ही कहां? विश्वरूप पूजा का घंटा बजने लगा.

मार्गम ने उठकर दांत साफ किए. पान की गिलौरी मुंह में दाबी और तम्बाकू फांकते हुए धर्मकर्ता के घर पहुंच गये.

'आइए!' चेहियार ओसारे पर बैठे किसी से बतिया रहे थे. उनकी पत्नी चौखट पर गोबर लीप रही थीं.

'आपके घंटे की ही चर्चा है, चारों ओर. यह कह रहा था कि रात अम्मा पेदे में सो रहा था. कितनी दूर होगा, बोलता क्यों नहीं, नौ कोस तो होगा ही.'

हां कैसी आवाज थी. बस सरसराती हुई. मैंने तो अपने भतीजे को बताया. अबे ओ इस घंटे को सुनकर तो अफसोस होता है. हम फिजूल हो ज्ञानी हो गये (ज्ञानी होना ईसाई धर्म में दीक्षित होना है)

'यह हुई न बात. पता है मार्गम, यह क्या कह रहा है. यह ज्ञानी हो गया है. इसके पिता थे, तभी ईसाई हो गया था. आपके घंटे की आवाज सुनकर अपने धर्म में लौटना चाहता है. क्यों ठीक कहा न मैंने.'

'हां सरकार, बिल्कुल ठीक कहा.'

'उसी के बारे में बात करने आया था. जब भी सुनता हूं, यही अहंकार होने लगता है कि यह मेरा बनवाया हुआ है. यह तो गलत बात हुई न!' मार्गम बोले.

'आप भी क्या कहते हैं. यहां तो लोग एक कूड़ेदान बनवाते हैं तो भी गाजे-बाजे के साथ पूरी दुनिया को न्योता दे आते हैं. फिर एक लंबा पट्टा लिखवा देते हैं.'

धर्मकर्ता की पत्नी रंगोली बना रही थीं.

'पता नहीं मुझे लगा, जैसे मैंने यह ठीक नहीं किया है. कितने लोग हैं. मैंने तो अपनी ढफली फिजूल ही बजा दी है. जब भी इस आवाज को सुनता हूं यही बात ध्यान में आती है. मेरे ध्यान में एक दूसरी बात भी आयी है, सोचता हूं क्यों न कह दूं'

'हां हां, कह डालिए.'

'सोचता हूं, उतनी ही कीमत में चार-पांच चांदी की घंटियां बनवा दूं तो कैसा रहे. एक गणेश के लिए, एक भगवान के लिए, एक देवी और एक कार्तिकेय के लिए और रहा यह घंटा इसे मैं अपने घर ले जाता हूं.'

दोहे

प्रश्न अनूप

मनोरंजन सहाय सक्सेना

युवा पुष्प की सेज पर, सोई निशि भर ओस,
प्रातः सविता रश्मि से, खुला ज्ञान का कोष.

सुधि आई जब तुहिन को, हुआ गहन संकोच,
क्या पाया रति रमण में, रह रह करती सोच.

प्रथम दृष्टि में लगा था, मुझे कुसुम सुकुमार,
कवि के सौन्दर्यबोध का, लगा रूप साकार.

दृष्टि मिली ज्यों ही प्रथम, लिया प्रणय संकल्प,
तन, मन खुद अर्पित किया, बुद्धि रही थी अल्प.

सूर्य रश्मि होगी प्रखर, बदलेगा यह रूप,
खुद को खोकर क्या मिला, है यह प्रश्न अनूप.

सम्पर्कः 25ए, लाल कोठी,
टोंक रोड, जयपुर (राजस्थान)

❑

'क्या कह रहे हैं आप?

'हां चेदियार. मेरी औकात ही क्या है? मैं तो कोने में पड़ा रहना चाहता हूं.'

'आप चांदी की घंटियां शौक से लगवाइए. मैं कब मना कर रहा हूं. पर इसे क्यों ले जाना चाहते हैं. यह तो उसकी माया है कि आपके माध्यम से उसने अपने लिए घंटा बनवा लिया. कोई सुनेगा तो हंसेगा आपकी बात पर. पूछेगा, कहीं मार्गम का दिमाग तो नहीं फिर गया और आप, क्या इतनी-सी बात के लिए भागे चले आए हैं. हद हो गयी. देखिए, इसे ही देख लीजिए इसे अब हिन्दू-धर्म में लौटना है.'

मार्गम हताश हो गये. चेदियार अपनी जिद पर अड़े रहे.

मार्गम उदास घर लौट आये.

वे नहा रहे थे कि प्रातः पूजन का घंटा बजा. उनके कान बज उठे. वे सोचने लगे, भला बहरा कैसे हुआ जा सकता है.

❑❑

आम का बौर

अमृता प्रीतम

उसका नाम किसी ने नहीं रखा. पैदा हुई तो उसकी दादी उसे गोद में लेकर खिलाती और कहती-

''यह तो वीरांवाली आई है. एक वीर पहले भेज दिया, अब एक अपने साथ लाएगी. ..'' लेकिन यह नाम वीरांवाली और किसी ने नहीं बुलाया...

वो कुछ बड़ी हुई तो किसी के मुंह से निकला-

''हाय, कितनी प्यारी है, पतली छमक-सी,'' तो हंसी-हंसी में उसका नाम छमक पड़ गया, और यही सब बुलाने लगे...

गांव में लड़कियों का एक स्कूल था, प्राइमरी तक, लेकिन जब छमक का वक्त आया, तो वो स्कूल दसवीं तक हो गया. स्कूल की पढ़ाई तो दसवीं तक हो गई, लेकिन उसका इम्तहान पासवाले शहर में जाकर देना था. लेकिन यह बात भी छमक के लिए मुश्किल नहीं थी, क्योंकि तब तक छमक की मौसी का घर शहर में बन गया था, जहां उन लोगों का कारोबार था, अनाज मंडल में....

इम्तहान में दस-बीस दिन रहते थे जब छमक की मौसी खुद गांव आकर छमक को ले गई. उसका कहना था कि शहर के किसी स्कूल के मास्टर से वो दस-बीस दिन और पढ़ लेगी तो अच्छा रहेगा...

ये मार्च के दिन थे. मौसी के बहुत तलाशने पर भी कोई मास्टर नहीं मिल पाया, जिसके पास दस-पन्द्रह दिन खाली हों. इसलिए मोसी के बेटे बीर ने ही बन्दोबस्त किया. उसने अपने कॉलेज के दिनोंवाले अपने दोस्त रब्बी से कहा कि उसकी बहन की खातिर वो कुछ दिनों के लिए वक्त निकाल ले...

बीर ने कॉलेज बीच में ही छोड़ दिया था. उसके चाचा की मौत ने बीर के बाप को बहुत अकेला कर दिया था और अब उसे अपने कामकाज के लिए बीर की जरूरत थी. लेकिन रब्बी ने कॉलेज भी पूरा कर लिया था और अब आगे की पढ़ाई के साथ-साथ नौकरी भी कर रहा था. बीर के साथ उसका मिलना-जुलना बना हुआ था, इसलिए बीर ने उससे रोज के दो घंटे मांग लिए-छमक के लिए...

रब्बी आया. कमरे में कदम रखते ही उसकी आंखें जैसे बाहर की ओर देखने की जगह अपने अन्दर में उतर गई. अन्दर कहीं एक झांवला-सा था, और उसे लगा, इस

वक्त वही झांवला बाहर उसके सामने खड़ा था...

छमक के गले में पहनी हुई हरी कमीज एक बार तो रब्बी की आंखों के सामने एक पेड़ की तरह दिखाई देने लगी और उसके कानों की पतली तार की बालियां, जैसे पेड़ के पत्तों की तरह झूमती हों...

बीर कह रहा था-

''रब्बी! यह मेरी बहन है–छमक...'' और छमक ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते की, लेकिन रब्बी खामोश-सा कुर्सी पर बैठ गया. उसे थोड़ा वक्त लगा अपने को संभालने में...

गणित की गिनती-गिनती से गुजरते हुए जाने कब दो घंटे गुजर गए, लेकिन वक्त का ख्याल तब आया जब मौसी ने कमरे में आकर चाय रखी और कुछ मट्ठी-मिठाई भी...

खाया-अनखाया-सा करके रब्बी वहां से अपने घर गया, तो जाते ही अलमारी में अपने कागजों को उलटने-पलटने लगा, बड़ी जल्दी से...

फिर कुछ कागज हाथ में लेकर वो गौर से उन्हें देखने लगा. रब्बी को आर्ट का कुछ पता नहीं था, लेकिन एक सपना था, जो उसे कई बार आता था औरउसे देखते ही वह चौंक जाता था. एक बार उसने अपने सपने को लकीरों में उतारा, तो फिर कई बार उतारा, लेकिन हर बार उसे लगता था कि वो ठीक से कागज पर नहीं उतर पाया...

एक सपना था जो पता नहीं बार-बार क्यों आता था. दिखाई देता कि आम का एक पेड़ है–कुछ दूर सा दिखाई देता, और जब वो कुछ पास जाता, तो वहां पेड़ नहीं होता था, उसकी जगह एक लड़की खड़ी हुई दिखाई देती... वो और पास जाता, तो वहां लड़की भी नहीं होती थी...

रब्बी को जब भी यह सपना आता, वो कुछ घबराकर जाग उठता. इस सपने को उसने कई बार कागजों पर उतारने की कोशिश की थी...वो लड़की कभी तो लगता, दूर से उसे देख रही होती, कभी वो सिर्फ पीठ की ओर से दिखाई देती, जिसका हरा पल्लू हवा में उड़ता-सा होता...कभी देखता कि उसने पेड़ की एक टहनी पर हाथ रखा हुआ है...और कभी वहां पेड़ नहीं होता था, सिर्फ वो लड़की होती थी...

अब रब्बी अपने उन कागजों पर उतारी हुई सूरत से छमक की सूरत मिलाकर देख रहा था. सूरत कागजों पर उस तरह नहीं मिल रही थी, जिस तरह उसे अपने अन्दर से मिल रही थी..

वो छमक के सामने पड़ी मेज पर बैठता था. एक बार खिड़की से आते हुए हवा के झोंके से मेज के सारे कागज बिखर गए थे. छमक ने उठकर खिड़की बन्द कर दी थी. उस वक्त खिड़की के पास खड़े होने के कारण छमक की चुनरी उड़ने लगी थी. और फिर जब उसकी चुनरी से उसकी बालियां कुछ अटक गईं, तो उन्हें खोलती-संभालती छमक बिलकुल वही दिखाई देने लग गई, जो रब्बी को सपने में दिखाई देती थी...ये छमक को पढ़ाने वाले पन्द्रह-बीस दिन रब्बी के लिए एक कयामत बन गए... वक्त गुजरना था, गुजर गया. रब्बी ने न कुछ छमक को बताया, न अपने दोस्त को. चुप का चुप रह गया...इम्तहान हो गया तो छमक के लौटने का वक्त भी आ गया, सिर्फ उस दिन रब्बी ने कहा–

''छमक तुम आगे कॉलेज में क्यों नहीं पढ़ती?''

छमक चुप रही फिर कहने लगी–

''जी तो चाहता है, पर ऐसा होगा नहीं...''

''क्यों?'' रब्बी ने कुछ इस तरह पूछा, जैसे उसकी आवाज में कुछ लाचारी हो, यह पूछने की...

छमक पहले तो चुप रही, फिर कहने लगी–

''फिर मेरे भाई का ब्याह कैसे होगा...''

बात कुछ अटपटी थी, जिससे रब्बी को हंसी भी आई और अजीब-सी व्याकुलता भी...

मौसी कमरे में चाय-पानी रख रही थी. उसके साथ उसकी बेटी लाली भी थी. लाली छमक की उम्र की नहीं थी, छोटी थी, लेकिन उसे छमक से इतना प्यार हो गया था कि उसका मन भी चाहता था कि छमक यहां उनके घर रहकर आगे की पढ़ाई करने लगे. इसलिए लाली जन्दी से छमक के पास आकर कहने लगी–

''रब्बी भाई की बात मान लो न दीदी! तुम्हें कॉलेज बहुत अच्छा लगेगा...''

छमक चुप थी. पास से मौसी कहने लगी–

''रब्बी बेटा! बात यह है कि छमक के भाई का ब्याह तभी होगा, अगर छमक का होगा तो. हमारी ओर इसी तरह ब्याह होते हैं. जिस घर की बेटी लाते हैं, उस घर में अपनी बेटी देनी होती है. जहां बात पक्की हुई है वहां सिर्फ छमक के इम्तहानों तक का वक्त दिया गया है. अब जाते ही, दो दिन के फासले पर छमक का ब्याह भी होने वाला है और उसके भाई का भी...''

रब्बी की आंखों के सामने न पेड़ रहा, न लड़की, सिर्फ एक अंधेरा बिछ गया...

मौसी ने आगे बढ़कर छमक के आंसू पोंछे, फिर कहने लगी–

''रोती क्यों है? अगर तेरा मर्द अच्छा हुआ तो उसे मना लेना आगे पढ़ने के लिए. कॉलेज में दाखिला तो जुलाई में होगा. बस, फेरे लेकर चली आना...''

फेरे! यह लफ्ज था, जो रब्बी के कानों से टकराया, तो फिर उसे कुछ सुनाई नहीं दिया. वो उठकर कमरे चला गया...

छमक का घर शगुनों से भरा हुआ था. जिस रोज इस घर के लोगों ने बारात चढाकर दूसरे घर में जाना था, उससे चौथे रोज दूसरे घरवालों ने बारात चढाकर उनके घर में आना था...

छमक के भाई को सेहरा बांधा गया. वो घोड़ी पर चढ़ा. छमक ने घोड़ी की बाग पकड़ी. फिर भाई डोली लेकर आया. उसने भाभी के मुंह में निवाले दिए. लेकिन छमक को लगता रहा, जैसे वो कुछ नहीं कर रही थी, सिर्फ सबकुछ होते देख रही थी.

छमक को मेंहदी लगी...

उबटन मलकर नहलाया गया. उसके बदन पर किनारीवाले कपड़े झिलमिलाने लगे. और जब उसने आईने में अपने को देखा तो उसे लगा, जाने कौन थी जो आईने में दिखाई दे रही थी, लेकिन वो नहीं थी, कहीं नहीं थी...

जाने यह कैसी आंधी थी, जिसने छमक के पैरों तले से जमीन भी निकाल ली और आंखों के सामने से आसमान भी.

जिस गांव में वो ब्याही आई थी, चार रोज के बाद वो गांव की लड़कियों के साथ बाहर खेतों में जाने लगी...

खाले के पास जाकर उसके सिर को ऐसा चक्कर आया कि वो वहीं एक पेड़ के नीचे बैठ गई...

उसके साथ की तीनों लड़कियां उसे बांहों से पकड़कर पेड़ के नीचे से उठाने लगीं–

''जल्दी उठो, जल्दी. थोड़ी दूर चलकर हम बैठ जाएंगी. यहां नहीं, यहां लड़कियां नहीं बैठतीं...''

छमक ने हैरानी से लड़कियों की ओर देखा.

एक बोली–

''अरी, यह पेड़ शापित है. इसके नीचे गांव की कोई लड़की नहीं बैठती... खड़ी भी नहीं होती...''

छमक ने पूछा–

''क्यों?''

लेकिन पूरी बात लड़कियों को मालूम नहीं थी. कहने लगीं– ''बस, इतना ही कहते हैं कि इस पेड़ को शाप लगा हुआ है. इसे बौर लगता है, लेकिन फल नहीं लगता. इसलिए यहां किसी लड़की को इसके पास नहीं आने देते...''

छमक ने पेड़ के झड़ते हुए बौर को हाथों में लिया तो लड़कियों ने जबरदस्ती उसे वहां से उठा दिया...

अब छमक का उठते-बैठते एक ही मन चाहता–उस पेड़ के नीचे जाने के लिए...

कुछ दिन और गुजर गए, तो वो अकेली घर से जाने लगी, उस पेड़ के नीचे बैठने के लिए...

उसे खुद पता नहीं चल रहा था कि उसे क्या हो रहा था.

कभी आंखों के सामने रब्बी का झांवला-सा आता, लेकिन उसकी ओर नजर भरकर देखना भी उसके बस में नहीं था, और झांवले को आंखों के आगे से हटाना भी उसके बस में नहीं था.

कुछ दिनों बाद घर के लोगों को लगने लगा कि छमक बहुत खूबसूरत थी, जाने इसीलिए शरीकों में से किसी ने कुछ कर दिया था...वो उठती-बैठती कुछ होश में नहीं लगती थी...

घर की एक बुजुर्ग औरत ने किसी फकीर से भी पूछा और फिर उसके कहने पर चार मंगलवार दरिया पर भी जाती रही, हर बार एक नारियल दरिया में बहाने के लिए... पर छमक की हालत उसी तरह रही...

एक दिन छमक अकेली जाकर खालेवाले पेड़ के नीचे बैठी हुई थी कि गांव का एक बुजुर्ग आदमी लाठी टेकता हुआ पास से गुजरा.

नजदीक आया तो बोला–

''बेटी , इस पेड़ के नीचे मत बैठो. इस पेड़ पर किसी की रूह रहती है...''

छमक कुछ देर उस बुजुर्ग की ओर देखती रही, फिर उठकर उसके पैर छूकर पूछने लगी–

''बाबा! यहां किसकी रूह है? मुझे भी यही लगता है कि कोई मुझे यहां बुलाता है...''

बुजुर्ग ने कहा–

''बेटी! एक बात कहते हैं, पता नहीं कब की है, देखी तो मैंने भी नहीं, पर सुनी थी कि इस गांव की एक लड़की होती थी, राजी, जिसे साथवाले गांव के पूरण से मुहब्बत हो गई. राजी के भाइयों ने पूरण से कहा कि वो शहर जाकर कुछ पैसा कमाकर

लाए, गांव में पक्का घर बनाए, तो वो राजी उससे ब्याह देंगे.''

छमक का जैसे सांस रुकता जा रहा था...

बुजुर्ग ने कहा–

''उस वक्त यही पेड़ था, जहां राजी आकर खड़ी हो जाती. उसने जाते हुए पूरण से कहा था–'यहां से गांव का बड़ा रास्ता दिखाई देता है, जो शहर की ओर जाता है. वो यहीं पेड़ के नीचे बैठकर उसकी राह देखती रहेगी, जब तक वो लौटता नहीं... लेकिन उस बेचारे ने कैसे लौटना था. उसे तो राजी के भाइयों ने शहर की राह जाते हुए मरवा दिया था, इसीलिए राजी भी पागल हो गई और पेड़ भी... इसीलिए अब पेड़ को फल नहीं लगता. .. मरती हुई राजी ने कहा था–'जब पूरण आ जाएगा, तब पेड़ को फल लगेगा'...''

बुजुर्ग ने अपनी गीली आंखें पोंछी और कहा–

''इसीलिए बेटी, तुम इस पेड़ के नीचे न आया करो. यह शापित हो गया है...''

उस वक्त छमक ने शहर की ओर जाते हुए रास्ते को देखा और कहने लगी–

''शापित नहीं हुआ बाबा! बैरागी हो गया...''

बुजुर्ग छमक की ओर देखने लगा...

बात शहर तक पहुंची, छमक की मौसी तक भी, कि छमक जब से ब्याही है, जाने उसे क्या हो गया है. वो छमक को देखने के लिए जाना चाहती थी, लेकिन घर से जाना नहीं हो पा रहा था. इसलिए उसकी बेटी लाली कहने लगी–

''मां, मुझे जाने दो. मेरा छमक दीदी को मिलने के लिए बहुत दिल चाहता है...''

रब्बी को पता चला कि लाली छमक के पास जानेवाली है, तो उसने एक दिन लाली के स्कूल में जाकर लाली कहा–

''अगर मैं तुम्हें एक खत दूं, तो तू छमक को दे देगी, अकेली को, जब कोई उसके पास न हो...''

लाली अब कुछ बड़ी हो गई थी. जिन्दगी के रहस्य उसके सामने भी किसी-किसी अक्षर की तरह उघड़ने लगे थे, कहने लगी–

''रब्बी भाई! आपने छमक को गांव क्यों जाने दिया था? यहां वो कॉलेज में पढ़ती तो...''

रब्बी कुछ उलझन में था कि वो छमक को अपने सपने की बात बताए या नहीं...और इसी बेचैनी में उसने सिर्फ चार पंक्तियां लिखीं, छमक के लिए. लेकिन वह अभी भी उलझन में था कि यह बात छमक को बताए या नहीं... सोच रहा था–अब बताने से क्या होगा... पर कुछ था जो उसके कहने में नहीं था– एक बार तो उसे बता दूं जिसे कई बार देखता हूं...

लाली ने उसके हाथ से खत ले लिया. रब्बी ने कहा कुछ नहीं, लेकिन मायूस-सी आंखों से लाली की ओर देखा...

लाली गांव आई, लेकिन छमक मायके के घर में नहीं थी. मां ने रोकर बताया–

''कहते हैं, वो अच्छी नहीं है. कई बार बुला भेजा है, लेकिन आती भी नहीं...कहते हैं, खालेवाले पेड़ के नीचे जाकर अकेली बैठी रहती है...जाने किसी ने उसे क्या कर दिया है...''

लाली ने कहा–

''मौसी, मुझे वहां भिजवा दो. मैं तो उसे मिलने आई हूं, मिलकर जाऊंगी...''

छमक की मां ने कुछ मट्ठी-मिठाई टोकरे में डाली और अपने पुराने एतबारी कामगार के साथ लाली को उस गांव भेज दिया जहां छमक थी...

लाली छमक से छोटी थी, फिर भी छमक को लगा, कोई अपना बड़ा उसके पास आया है. वो लाली से कभी मौसी का हाल पूछती, कभी बीर का, और फिर खामोश-सी उसकी ओर देखने लग जाती...

दूसरी शाम छमक लाली को लेकर उसी खालेवाले पेड़ के

नीचे चली गई, जहां लाली ने आहिस्ता से पूछा–

''तू किसी और का हाल नहीं पूछेगी?''

छमक ने कहा कुछ नहीं, पर लाली की ओर देखने लगी. लाली ने ही हंसकर कहा–

''दीदी, रब्बी भाई का हाल नहीं पूछना?''

छमक सारी-की-सारी अपने दिल की तरह धड़कने लग गई...

''यह लो, रब्बी भाई ने तुम्हें एक खत दिया है,'' लाली ने कहा तो छमक के हाथ खत लेते हुए कांपने लग गए... बस, चार पंक्तियां थीं–'जब से मैंने होश संभाला है, सपने में मुझे एक पेड़ दिखाई देता है. फिर देखता हूं कि वहां पेड़ कोई नहीं होता, वहां तुम होती हो... पास जाता हूं तो तुम कहीं नहीं होती, सिर्फ एक और पंक्ति थी–

''मैं इस सपने का रहस्य नहीं जान पाया. अगर तुम्हें कुछ पता चले तो बताना...''

छमक की आंखों के सामने से सारे अक्षर अलोप हो गए, वो कागज भी, और उसकी जगह एक रोशनी-सी चमक गई कि वो छमक नहीं थी, राजी थी, और रब्बी उसका पूरण था...

छमक पूरी तरह होश में नहीं थी. लाली मुश्किल से उसे थामकर घर लाई. छमक सारी रात चारपाई पर ऐसे पड़ी रही, जैसे उसमें जान न रही हो...

लाली ने वो खत संभाल लिया, छिपा लिया, लेकिन बड़ी घबरा गई थी. घर के लोगों ने लाली को हौसला दिया–

'तू चिन्ता न कर बेटी, इसका तो रोज का यही हाल है.. .कई हकीमों से पूछ चुके हैं, फकीरों-दरवेशों से भी...जाने इसे क्या हो गया है...'

दूसरे रोज लाली ने लौटना था, छमक भी कुछ होश में थी, वह लाली से कहने लगी–

'खत का जवाब लेकर नहीं जाएगी?'

'हां, लेकर जाना है,' लाली ने कहा और रो पड़ी...

छमक ने कागज लेकर दो पंक्तियां लिखीं–

'मैं अभी भी उस पेड़ के नीचे खड़ी...पिछले जन्म से खड़ी. ..पर इस पेड़ को बौर लगता है, फल नहीं लगता...'

❑❑

कविता

कवि की व्यथा

राजेश माहेश्वरी

मैं एक कवि हूं
समाज में हो सकारात्मक परिवर्तन
इसके चिंतन, मनन और मंथन में
लीन होकर करता हूं काव्य का सृजन
उनका श्रोताओं के सामने
करता हूं प्रस्तुतिकरण
वाह-वाह से उनकी
मिलती है मन को तृप्ति
वे कारों में आकर,
काव्यपाठ सुनकर
वापिस चले जाते हैं
और मैं भी इसके बाद
सम्मान में दिये गये
पुष्पगुच्छों को छोड़कर
अपनी काव्य रचना के साथ
चुपचाप पैदल ही
अपने घर की ओर
प्रस्थान करता हूं
रास्ते में चिंतन करता हूं
काव्य रचना देती है प्रसिद्धि,
परन्तु दो वक्त की रोटी
का कहीं नहीं है प्रबंध
फिर भी भूखे पेट रहकर,
कभी जल पीकर
तृप्त हो जाता हूं
और निकल पड़ता हूं
अगली काव्य प्रस्तुति के लिए
इसी दिनचर्या में
कवि का जीवन बीतता है
यही है उसके जीवन का
आरंभ और अंत!

सम्पर्कः 106, नया गांव, रामपुर, जबलपुर. (म.प्र.)

❑❑

सप्तऋषि का वंशधर

मनीष कुमार सिंह

"**मि**स्टर मूर्ति, इस काम में इतनी देरी कैसे हुई?" उच्चाधिकारी ने खिसिया कर पूछा. उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसने फाइल पर लिखा. 'वाई अनड्यू डिले?" फाइल को उसने लगभग धकियाते हुए मूर्ति की ओर बढ़ाया.

मूर्ति ने फाइल लेकर उसी वक्त उस पर अंग्रेजी में लिखा. ऑफिस प्रक्रिया के तहत सामान्य विभाग का कोई भी कर्मचारी इस काम में कुशल नहीं है. इसीलिए यह देरी हुई है." लिखकर उसने फाइल सामने आंखें तरेरते उच्चाधिकारी की ओर बढ़ायी. लेकिन उसके अंदाज में धकियाते हुए नहीं बल्कि सभ्य तरीके से. वह झुंझलाया लेकिन साथ ही दशहत में भी आ गया. इस तरह का कारण तो हर मामले में बताया जा सकता है.

"मिस्टर मूर्ति जिसने भी आपको इस विंग का चार्ज दिया है उसने आपके विलक्षण ज्ञान के साथ अन्याय किया है." उच्चाधिकारी ने विशेषज्ञ के तौर पर टिप्पणी की.

"मैं जानता हूं." उसने कृत्रिम सौम्यता से सर झुकाया.

मूर्ति यानि वी.के.एस.मूर्ति का संक्षिप्त रूप. इसके अक्षरों को विस्तार दिया जाए तो एक-डेढ़ पंक्ति तक मामला चला जाता था. किसी को ऐसा करने में रुचि नहीं थी. यह विस्तृत नाम महज सरकारी अभिलेखों के लिए था. अपने कमरे में आकर मूर्ति ने कुर्सी पर सर टिका लिया. चपरासी को पानी लाने को कहकर वह सामने देखने लगा. खिड़की के आगे एक ठिगना सा पेड़ नजर आता था. यहां से हरियाली या बाहर के दृश्य के नाम पर बस यही था. ज्यादातर कमरों में तो यह भी देखने को नहीं मिलता था. कुछेक में खिड़की के बाहर संकरे गलियारे थे जहां बेकार पड़ी आलमारियों ने काफी जगह हथिया रखी थी.

घुंघराले बाल और घनी मूंछों वाला मूर्ति बेहद सज-धज कर गले में पहचान पत्र लटका कर ऑफिस आता. कमीज और पैंट की क्रीज कहीं से भी त्रुटिपूर्ण नहीं नजर आती. मीटिंग में परिष्कृत अंग्रेजी बोलता. अपने कमरे में लोगों से हंसकर तमिल उच्चारणयुक्त हिन्दी में बातें करता. कैंटिन के चायवाले से भोजपुरी में बोलने की हास्यापद कोशिश करते हुए उसके घर का हाल पूछता था. चायवाले ने लोगों को बताया कि साहब ने उसके लड़के की बीमारी का इलाज कराने के लिए पैसे दिए हैं.

'मूर्ति तुम्हें यहां लगाने की सिफारिश बॉस से मैंने की थी, इसलिए मुजरिम मैं हूं.

मनीष कुमार सिंह

भारत सरकार, सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय में प्रथम श्रेणी अधिकारी. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं यथा- हंस, कथादेश, समकालीन भारतीय साहित्य, साक्षात्कार, पाखी, दैनिक भास्कर, नयी दुनिया, नवनीत, शुभ तारिका, अक्षरपर्व, लमही, कथाक्रम, परिकथा, शब्दयोग, इत्यादि में कहानियां प्रकाशित. पांच कहानी-संग्रह 'आखिरकार'(2009),' धर्मसंकट' (2009), 'अतीतजीवी' (2011), 'वामन अवतार' (2013) और 'आत्मविश्वास' (2014) प्रकाशित. 'आंगन वाला घर' शीर्षक से पहला उपन्यास प्रकाशनाधीन.

सम्पर्कः एफ-2, 4/273, वैशाली, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश. पिन-201010

" उसके सामने बैठे उत्तर भारतीय सहकर्मी भाटिया ने कॉफी की चुस्की लेते हुए कहा. "अब तुम जो भी गुल खिलाओगे उसके पाप का एक हिस्सा मेरे खाते में जाएगा." भाटिया के चेहरे पर मुस्कान थी. साथ में बैठे दो-तीन और साथी भी थे जो इस परिहास का रसास्वादन की गरज से कान लगाए हुए थे.

"देखो गुरु," मूर्ति ने अपने हाथ फैलाए, "मैं इतना बूता रखता हूं कि अच्छी से अच्छी जगह पर अपनी पोस्टिंग करवा सकूं." लोग-बाग उसके कथन को गर्वोक्ति समझ कर मुस्कराए. लेकिन उसके अतीत को जानते हुए वे अन्दर ही अन्दर यह महसूस कर रहे थे कि इसके पीछे कुछ सच्चाई भी है.

"मूर्ति यूं कब तक दुनिया-जहान से झगड़ा करते रहोगे? हम सब चाहते हैं..." भाटिया ने सभी को शामिल करने के लिहाज से अपने अगल-बगल विराजमान दोनों सहकर्मियों के कन्धे पर हाथ रखा, "तुम्हें जीवन में समझौतावादी होना चाहिए."

"कम्प्रोमाइज...!" मूर्ति के होंठ विद्रूपता से सिकुड़ गए, "अरे चलो कम्प्रोमाइज...गलत शब्द निकल गया. मेरा मतलब तुम समझ रहे हो ना?"

"बहुत अच्छी तरह से." वह शांत स्वर में बोला. सभी को लगा कि वह उनका मजाक उड़ा रहा है. "मूर्ति यू आर..." एक ने उसके कन्धे पर धौल जमाने के लिए हाथ उठाया.

"इम्पासिबल!" वह हंसा. सहकर्मी का हाथ उठा रह गया.

"मूर्ति माई फ्रेंड, तुम चेन्नई लौट जाओ. वहां भी तुम्हारे जैसे टैलेंट की जरुरत होगी. तुम्हारी फैमिली में कोई उधर होगा."

"हां क्यों नहीं, मेरी दूसरी वाइफ उधर रहती है."

"मान गए तुम्हारे सेन्स ऑफ ह्यूमर को." अन्ततः मजमे में से एक बोला. "वैसे साउथ का हाल यहां से अच्छा होगा."

"हर जगह कामन मैन मल्टी डायमेंशनल पावर्टी में फंसा है, चाहे इधर हो या उधर." वह बोला.

"वाह क्या धांसू जवाब है." उसे सबसे ज्यादा समय से जानने वाला भाटिया ताली पीट कर बोला. "यार मूर्ति ऐसी बातें प्लीज न किया करो."

"तुम्हारे नायाब आइडियाज से देश का जरूर भला होगा." मण्डल ने कनखियों से भाटिया की ओर देखते हुए मूर्ति से कहा. वह समझ गया कि मण्डल गंभीर नहीं है. शर्मा को सिगरेट की तलब हो रही थी. वह जेब में नहीं रखता था. जब पीना होता तो खरीद लेता. मोड़ पर रुककर वह सिगरेट सुलगाने लगा. "लेकिन बॉस तुम्हारे आइडियाज कम से कम नार्थ इंडिया में नहीं चलेंगे. यहां तो बैरिकेड लगाने पर भी लोग छलांग मार कर सड़क पार करते हैं. साउथ वाले शायद तुम्हारी बात समझ जाए." एक कश लेने के बाद शर्मा ने कहा.

"लेकिन साउथ वाले क्या कम रफ एण्ड टफ होते हैं."

भाटिया ने टुकड़ा जोड़ा. ''वहां ज्यादा लोग आत्मदाह करते हैं.'' बात भटकती जा रही थी. मूर्ति मौन रहकर बात को वहीं खत्म करना चाहता था.

लंच के दौरान हुई इस गपशपनुमा नोंक-झोंक की समाप्ति के बाद कॉरिडोर में अपने-अपने कमरों को प्रस्थान करते वक्त भाटिया ने धीमे से जानकारी दी. ''इस आदमी के खिलाफ इतने मेमो जारी हुए हैं कि आलमारी का पूरा एक रैक भर जाए.''

दफ्तर के गलियारों में जब मूर्ति चलता तो उसके लम्बे और भारी जूतों से जो आवाज निरंतर निकलती उसे सुनकर लगता कि साथ में कोई और भी चल रहा है. लोगों को मालूम हुआ कि हफ्ते के हर आखिरी कार्यदिवस घर जाने से पहले वह पूरे स्टॉफ को अपने कमरे में चाय के लिए बुलाता है. कभी-कभी पैटीज और क्रीमरोल मॅंगवाकर सभी को खिलाएगा और उनसे उनकी घर की बातें करेगा. फिर तो नीचे वाले कर्मचारी उससे बहुत खुश रहते होंगे. पता नहीं सुना है कि वह काम के मामले में बड़ा सख्त है. कोई रियायत नहीं करता है.

''मूर्ति तुम अपने को इतना सेफ इसलिए मानते हो कि तुम्हारा गॉडफादर बैठा हुआ है.'' भाटिया ने हफ्ते भर बाद हुई एक लंचोपरांत बैठक में सबको सुनाते हुए कहा. ''दोस्त टकराने के लिए हिम्मत चाहिए. गॉडफादर क्या करेगा.''

''वाह यह हुई न बात.'' जमघट से आवाज आयी. लोगों को क्या था. बस चटकारे लेना है. ''सुना है कि एक मिनिस्ट्री में ऊंचे पोस्ट पर कोई मैडम हैं जोकि तुम पर खास मेहरबान हैं.'' भाटिया कहां बाज आने वाला था. ''इसके अलावा हजूर की कई गर्लफ्रेन्डस् भी जगह-जगह हैं जो इनकी पोस्टिंग और पर्सनल सेटिंग के साथ नौकरी कायम रखने में बड़ी मदद करती हैं. एम आई राईट सर?'' वह बनावटी ढंग से मुस्कराया.

''दे आर नॉट माई गर्लफ्रेन्डस. दे आर फ्रेन्डस् हू हैपेनस् टू बी गर्ल.'' वह शांत था. मानना पड़ेगा. उसमें लोगों के तीर झेलने की कुव्वत है.

क्रय समिति की बैठक में मूर्ति का बाकी सदस्यों से एक बड़ा झगड़ा हुआ. सामान्यतया सरकारी कार्यालय में तू-तू, मैं-मैं की नौबत नहीं आती है लेकिन अंग्रेजी में सलीके से तीखे बाण चलाने पर रोक थोड़े न है. लोगों को लगा कि मूर्ति बैठक का बहिष्कार करेगा लेकिन वह उसकी समाप्ति तक उपस्थित रहा. सामान की खरीद नहीं हो पायी. प्रक्रिया को लेकर उसे गंभीर आपत्तियां थीं.

इतनी अकड़ किस काम की. बड़े लोगों के लिए जो खरीदनी है उसे कौन रोक पाएगा. लगता है कि मूर्ति का इस विभाग से ट्रांसफर हो कर रहेगा. ''मूर्ति के रहते ऐसा नहीं हो पाएगा. उसे पचाना सिस्टम के लिए मुश्किल होगा.'' एक की आशा भरी आवाज थी. ''इसका मतलब है कि तुम्हें सिस्टम के हाजमे के बारे में कुछ नहीं मालूम.'' यथास्थिति के एक समर्थक ने कहा.

''मूर्ति तुम इतनी अच्छी हिन्दी कैसे बोल लेते हो?'' गुप्ता ने पूछा.

''क्योंकि मैं मदुरई में पैदा जरूर हुआ हूं लेकिन दिल्ली में पला और पढ़ा हूं. यहां की जुबान, कल्चर और रिवाज मालूम हैं इसलिए कह सकता हूं कि बुनियादी बातें हर जगह एक जैसी हैं. हर तरफ कुदरत की पूजा होती हैं. हम सुबह सूर्य देव को जल चढ़ाते हैं. पर मैं एक बड़े लोटे में पूरा पानी भर कर सर के ऊपर ले जाकर जल चढ़ाता हूं. इससे सूरज की सातों रंग की किरणें हमारे सर, गले, नाभि हर जगह सही असर डालती हैं. सबकुछ पूर्णतया वैज्ञानिक...''

''सूरज, चांद, पानी और घास में जो गुणकारी चीजें हैं वो सब तुम्हें मालूम हैं.'' भाटिया ने टिप्पणी की.

दोपहर में लंच ऑवर में थोड़ी फुरसत पाकर लोग घूमने निकले. बरसात के मौसम में शहर की सड़कों के किनारे लगे जामुन के पेड़ों से पके फल टपाटप गिर रहे थे. लोगों के पैरों तले कुचलकर पूरा फुटपाथ जामुनी रंग का हो गया था. मूर्ति ने नीचे झुककर एक जामुन उठा लिया. पता नहीं अब तक कैसे कुचलने से बचा रहा. शायद अभी-अभी गिरा होगा. रूमाल से पोंछकर उसने जामुन को मुंह में डाल लिया.

''हें...हें मूर्ति डियर क्या करते हो. यह भिखमंगापन ठीक नहीं है. चलो गोल डाकखाना, वहां तुम्हें बड़े साइज के खालिस जामुन खिलाता हूं.'' मण्डल हड़बड़ाया.

''माई फ्रेन्डस् मैं बीस साल से दिल्ली में हूं. हर बरस यही कहानी देखता हूं. आखिर हम इस शहर को अपना क्यों नहीं मानते हैं. हमारे ग्रुप में एक-एक भाटिया और चड्ढा, दो-दो मण्डल और विश्वास, एक गुप्ता, चार-छह सिंह, शर्मा वगैरह और एक-दो दास, महापात्रा और नाईक हैं. सबके सब अपने प्रांत का नाम पहले लेंगे, फिर बहुत जरूरी नहीं हुआ तो इस शहर का नाम गोल कर देंगे; वरना बिल्कुल अंत में हारकर यह मानेंगे कि हम दिल्ली में रहते हैं...भई खाते-कमाते यही हो. यह कौन सा एटीट्यूड है?''

मण्डल ने विषयांतर किया. ''बॉस, बड़े अफसर बडा बुरा बतार्व करते हैं. सारा काम करवाएंगे और ऐसे दिखाएंगे जैसे हमें कुछ नहीं आता.''

''सब्र करो, जब पार्लियामेंट कमेटी के सामने इनकी पेशी होगी तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा. ऐसी कमेटियों में ज्यादातर फ्रस्टेटेड एम.पी. होते हैं. हमेशा सामने वाले को खाने को तैयार. ऐसे नाजुक वक्त मामले की तह तक पहुंचने के लिए

उन्हें हमारी जरूरत पड़ेगी. फिर दिखाएंगे कि क्या चीज हैं.'' मूर्ति बेफ्रिक था

मण्डल उसके बेपरवाह रुख से आश्वस्त नहीं हुआ. उसके भाव को पहचान कर मूर्ति ने बात की दिशा बदली. ''मैंने कुछ लोगों से कई अच्छी बातें सीखी हैं. मसलन हमारे एक साहब हुआ करते थे. उनके साथ मेरे दोस्ताना रिश्ते थे. उन्होंने मुझे एक बात सिखायी कि मूर्ति देखो किसी ऑर्गेनाइजेशन में इंसान की काबिलियत एक से दस के बीच नहीं आंकी जाती है. यह माइनस फाइव से प्लस फाइव के बीच होता है. अगर हम अपने सारे बेसिक काम जो करने चाहिए वो करते हैं तो जीरो पर हैं. इसके बाद जो एक्सट्रा एफर्ट करते हैं वो हमें जीरो से आगे ले जाता है.''

मूर्ति जरा मेंटल है. लोगों ने आपस में बातचीत के दौरान कहा. ''सुना है कि वह पेड़-पौधों से बातें करता है.'' भाटिया ने राज की बात बतायी. ''हैं...!! यह कैसे?'' लोगों ने हैरानी मिश्रित कौतुहल व्यक्त किया. ''अब पता नहीं लेकिन सुबह-सुबह पार्क में मार्निंग वॉक पर जाते हुए कुछ लोगों ने ऐसा कहा. हो सकता है कि उन्होंने ऐसा कुछ नोटिस किया हो.'' भाटिया के मुख पर वक्र मुस्कान थी.

''मुझे तो वह बिल्कुल नॉरमल लगता है.'' मण्डल ने राय जाहिर की.

लेकिन चड्ढा सहमत नहीं था. ''बॉस ऐसे मामलों में पेशेंट को दुबारा इस तरह का दौरा पड़ सकता है.''

घर में बैठा मूर्ति अपने बच्चे को गणित पढ़ा रहा था. उसने खुद कॉलेज में मैथ्स लिया था. लेकिन नौकरी ऐसी थी जिसमें गणित के सूत्रों का कोई महत्व नहीं था. अलबत्ता घर पर यह काम आ रहा था.

मूर्ति के मित्र-गण पधारे. भाटिया ने तांका-झांकी वाले अंदाज में इधर-उधर देखा और पूछा. ''बॉस सब ठीक है ना?''

उसने नजर उठाकर उसे देखा. दो पल बाद कहा, ''मतलब?''

''नहीं बस हालचाल पूछ रहा था.''

''एब्सूलूटिली फाइन. शाम को वाइफ को मार्केट घुमाता हूं. रात में सोने से पहले बच्चों को होमवर्क में मदद करता हूं'' भाटिया को कहीं कुछ भी असामान्य नहीं दिख रहा था. क्या मूर्ति अबनॉरमल लोगों के बीच एक सामान्य इंसान है?

मूर्ति के घर में घुसने पर मित्रों को कुत्ते के पिल्ले की आवाज सुनायी दी. ''यार तुमने किस नस्ल का डॉग पाला है? बड़ी जोरदार आवाज है.'' मण्डल ने व्यंग्यपूर्वक कहा.

''कोई डॉग-वॉग नहीं पाला है. यह मेरा भांजा है जो सड़क पर भटकते किसी पिल्ले को पकड़कर लाया होगा. दूध-बिस्कुट खिलाएगा और फिर थोड़ी देर बाद छोड़ देगा.''

''भांजा...!'' चड्ढा ने कृत्रिम हैरानी प्रदर्शित की.

''हां, हम कोई बेऔलाद अमरीकी दंपत्ति नहीं हैं जो बढ़िया नस्ल के कुत्ते पालकर उसे अपनी औलाद की तरह पालेंगे. मेरी बहन के हसबैण्ड कुछ साल पहले एक बीमारी की वजह से चल बसे थे. बहन की दो लड़कियां और एक लड़का है. बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का खर्च भारी पड़ रहा था. मैंने फैसला किया कि उसकी एक औलाद को खुद पालूंगा. पढ़ाई करवाऊंगा, सो मेरे पास रहता है.''

''फिर तो तुम्हारा घर ज्वाइंट फैमिली जैसा है.'' चड्ढा अपने मन के भाव छिपाते हुए बोला. उसे लगा कि यह आदमी स्पष्ट बोलता है लेकिन शुष्क नहीं है.

''जो भी समझो. मैं रिश्ते प्यार से निभाता हूं. हमारे लिए यह बोझ नहीं है.'' वह बिना बुरा माने सामान्य भाव से बोला. अन्दर के कमरे से किसी वृद्धा के खांसने की आवाज आ रही थी. मूर्ति का बेटा बाहर निकला. ''पापा दादी ने अपना चश्मा फिर तोड़ दिया है.'' वह कोई वाचिक बयान न देकर बस मुस्कराने की कोशिश करने लगा. थोड़ी देर बाद कहा. ''कोई बात नहीं, इस बार नया चश्मा बनवाऊंगा तो उसे धागे से दादी के कानों में बांध देना. फिर नहीं गिरेगा.''

''मेरा जीवन बिल्कुल सही चल रहा है.'' वह दोनों हाथ सर के पीछे करके चैन से सोफे पर पसरता हुआ बोला. ''बच्चे अच्छे स्कूल में हैं. वाइफ पहले जॉब करती थी अब अपनी खुशी से घर देख रही है.'' अन्दर झांक कर वह बोला. ''चलो तुम सबको चाय पिलाता हूं.''

लोगों को शगल करने योग्य कुछ खास दिख नहीं रहा था. वे बातचीत में रुचि खोने लगे. मूर्ति शायद यह भांप गया. ''हमारा पेपरलेस रिलेशन है यारों. पेपर वाला रिश्ता तो वह होता है जिसमें जब तक एक जगह पोस्टिंग रही, तब तक मिलना-जुलना हुआ. पेपरलेस रिश्ते में इंसान ऑफिस के बाहर भी, ऑफिस टाइम के बाद भी मिलता है....रात में दो बजे आप अपने दस दोस्तों को फोन कीजिए. जो कॉल रिसीव कर ले समझिए कि वही सच्चा दोस्त है. वरना ऐसे तो हर किसी के मोबाइल में पांच सौ लोगों के नंबर रहते हैं.''

लौटते हुए रास्ते में भाटिया आखिरकार बोल पड़ा. ''अगर दुनिया खुद को राजघराने का समझती है तो यह भी सप्तऋषियों का वंशधर है.''

❑❑

कमांडो

वेद राही

हम उस रेस्ट हाउस के कमरे में पहुंच गए. चौकीदार सामान भी ले आया. फैसला हो चुका था कि हम आज आगे लेहोटा गांव नहीं जाएंगे. रात यहीं काटेंगे. अब किसी तरह की कोई जल्दी नहीं थी. चौकी दार को खाना बनाने के लिए कह दिया. हमारे साथ डोडा से जो पांच कमांडो आए थे, उन्हें मिलाकर हम कुल सात लोग थे. वे पांच साथ वाले कमरे में थे. पांचों गबरू जवान—उन्हें हमसे ज्यादा भूख लगी होगी. मैंने घड़ी देखी. तीन बजने वाले थे. सोफे पर बैठे-बैठे मैंने मेज पर टांगें फैला दीं. यह देखकर मुझे हैरानी हुई कि रवीन्द्र अपने बैग में से व्हिस्की की बोतल निकाल रहा था.

''सर लेंगे?'' उसने पूछा.

''नहीं भई, यह कोई पीने का समय नहीं है?''

''बहुत सर्दी है सर, एक छोटा ही सही.''

''नहीं.''

उसने अपने लिए डबल पैग बनाया. थोड़ा पानी मिलाकर बड़े-बड़े घूंट भरने लगा. मैंने उससे पूछा, ''रवींद्र यह तुम्हें क्या हो गया है, पहले तो तुम्हें कभी इस तरह दोपहर में पीते हुए नहीं देखा?''

''यह ठाठरी है सर! नवंबर महीने के आखिरी दिन. बाहर कितनी ठंडी हवा चल रही है. देखिए चनाब भी कितना शोर मचा रहा है.''

उसकी बात सुनकर मेरा ध्यान चनाब दरिया की निरंतर आ रही 'शूंऽऽऽ शांऽऽऽ' की तरफ गया. वह गरजदार आवाज बहुत पास से आ रही थी. मैं दरिया देखने के लिए उठा. उस कमरे में जब हम आए थे तो अगले दरवाजे से आए थे. तब दरिया दिखाई नहीं दिया था. इसलिए मैंने पिछले दरवाजे से बाहर जाने की सोची. वह दरवाजा उस कमरे में खुलता था, जहां कमांडो जवान बैठे हुए थे. मुझे देखकर वे सभी खड़े हो गए.

''साहब कहां जा रहे हैं?'' उनमें से एक ने पूछा.

''बाहर दरिया देखूंगा.'' कहकर मैं बाहर निकल गया. बरामदा पार करके मैं उस दीवार के पास जा पहुंचा जहां चनाब दरिया नजर आ रहा था. मैं वह दृश्य बस देखती ही रह गया. लहरें इतनी तेजी से दौड़ रही थीं, जैसे आपस में ही उनकी रेस हो रही

वेद राही

जन्मः 1933

डोगरी-हिन्दी के सुपरिचित लेखक, निर्माता, निदेशक. कई उपन्यास एवं कहानी संग्रह प्रकाशित. साहित्य अकादमी से पुरस्कृत.

हो. बेतहाशा दाएं-बाएं देखने का समय नहीं. मैंने चनाब को कई स्थानों पर देखा है, अखनूर, रियासी, रामबन, डोडा, मगर यहां ठाठरी में वह कुछ ज्यादा ही तीव्र गति से दौड़ रहा था.

''साहब!''

मैंने पीछे मुड़कर देखा, एक कमांडो मेरे पास आ खड़ा हुआ था.

''साहब यहां ज्यादा देर मत खड़े रहिए.''

''क्यों?''

''बरामदे में आ जाइए.''

''मगर क्यों?''

''यहां कहीं से भी गोली आ सकती है.''

मैं मुस्कुराकर इधर-उधर देखने लगा. शायद मेरे मुस्कुराने का कारण यह था कि मैं उसे अपने बेखौफ होने का सबूत दूं. लेकिन सबूत देने का खयाल इसी बात का सबूत था कि खौफ पैदा हो चुका था. यह सच था कि दरिया की दिशा को छोड़कर बाकी किसी तरफ से भी गोली आ सकती थी. लेकिन मैं वहां से नहीं हिला. मैं डरना नहीं चाहता था. अभी तो कल सात किलोमीटर पहाड़ के ऊपर जाना था. मैंने उससे कहा, ''अब मुझे क्या डर है, तुम जो मेरे पास खड़े हो.''

''साहब मेरे होने से गोली तो आने से नहीं रुकेगी. आप बरामदे में चलिए, मैं आपके लिए कुर्सी लाता हूं.''

बरामदे की तरफ जाते हुए मैंने पूछा, ''तुम्हारा नाम क्या है?''

''तारिक अली.''

''तुम्हें डर नहीं लगता यह काम करते हुए?''

''हमें कैसा डर जनाब, हमारे हाथ में राइफल है.''

''खुफिया जगह से आने वाली गोली यह थोड़े ही देखेगी कि तुम्हारे हाथ में राइफल है.''

''हमारी नौकरी ही ऐसी है. सरकार हमें इसीलिए तनख्वाह देती है कि हम हर वक्त जान हथेली पर रखते हैं.'' उसकी बात में सच्चाई थी. मैं बरामदे में आ गया और उसके बारे में सोचने लगा. संसार में सभी अपना-अपना काम कर रहे हैं. मैं भी तो अपना काम करने के लिए ही यहां तक इस खतरनाक जगह पर आ पहुंचा हूं. तारिक दो कुर्सियां उठाकर ले आया. पर मैं बैठा नहीं. मैंने सोचा अगर दरिया ही न दिखाई दे तो फिर इतनी सर्दी में वहां बैठने का क्या मतलब? मैं कमरे के अंदर चला आया.

गिलास खाली था और रवींद्र सोफे पर टांगें पसारकर बैठा था. मेरे आने की आहट सुनकर उसने अपनी आंखें खोल दीं. मैंने उसके सामने बैठते हुए कहा, ''रवींद्र मेरी समझ में नहीं आ रहा आज तुम इतनी क्यों पी रहे हो?''

''बहुत सर्दी है सर, आप भी पीजिए.''

''सर्दी तो है, मगर तुम ठाठरी आकर डर के कारण पी रहे हो?''

''नहीं सर, यह बात नहीं.''

मुझे महसूस हुआ कि मैंने उसके साथ ज्यादती की है. मुझे तो यहां आना ही था, इसे साथ लाने की क्या जरूरत थी? पिछले चौबीस घंटों में मैं जो महसूस कर रहा हूं, जिस वातावरण में सांस ले रहा हूं उसका अनुमान मैंने पहले कभी नहीं लगाया था. लेकिन रवींद्र को इन बातों का पता था, दोस्ती निभाने की खातिर उसने इतना बड़ा खतरा उठाया? बेवकूफ शराब पीकर अपना खौफ दूर करने की कोशिश कर रहा है! अभी तो रात इसी रेस्ट हाउस में गुजारनी है, और कल लेहोटा गांव जाना है, जहां मिलीटेंटों ने एक पूरे गांव पर हमला किया था, और पंद्रह लोगों को मारकर भाग गए थे. उनमें छह औरतें थीं, तीन बच्चे, एक बच्चा एक साल का था.

खाना खाकर रवींद्र फिर सो गया. अगर उसने शराब न पी होती तो शायद उसे नींद नहीं आती. जैसे मुझे नहीं आ रही थी. अब मैं सोचने लगा था कि क्या मुझे इतने खतरे में आना चाहिए था? जान ही नहीं रही तो वह डॉक्यूमेंट्री फिल्म कैसे बन सकती है, जिसे बनाने से पहले मैंने लेहोटा गांव जाना जरूरी समझा. वास्तव में कई बार ऐसा होता है कि किसी खास सिचुएशन में घिरे बगैर हम उसके भीतरी खतरे का अंदाजा ही नहीं लगा सकते. मुंबई में बैठे हुए क्या मैं चनाब दरिया की यह आवाज सुन सकता था? लगातार आती हुई यह घनगरज चारों तरफ फैले हुए खौफ को और गहरा कर रही है. यह सच था कि रेस्ट हाउस पर किसी वक्त भी मिलीटेंट हमला कर सकते थे. अच्छा हुआ कि डोडा बैठे हुए पुलिस आफिसर ने पांच कमांडो साथ भेज दिए. चार के पास ए.के. 47 राइफलें थीं, और एक के पास मोर्टार. लेकिन जब अटैक होता है, और फायरिंग शुरू हो जाती है तो किस तरफ क्या होगा, यह किसको पता?

फिर भी इन सोचों में डूबे हुए मैंने यह बिलकुल नहीं सोचा कि मुझे लेहोटा गांव नहीं जाना है. मैं मुंबई से खास तौर पर इसीलिए आया था. इस डॉक्यूमेंट्री फिल्म के निर्माता को बिना सोचे-समझे मैंने कह दिया था कि वह मेरा अपना इलाका है, और वहां मैं जाता ही रहता हूं. बड़े जोश में मैं मुंबई से जम्मू, जम्मू से बटोत, बटोत से डोडा और डोडा से ठाठरी आ पहुंचा था और

ठाठरी के इस रेस्ट हाउस में खतरे का एहसास होने लगा था. यह ठीक बात नहीं, मैंने सोचा. चाहे कुछ भी हो, लेहोटा गांव तो जाना ही है. मैंने रवींद्र की ओर देखा, वह खर्राटे मार रहा था. पांच बजने वाले थे. मैं उठ खड़ा हुआ. मैं अपनी भयाक्रांत सोचों को झाड़-पोंछ देना चाहता था. मैं बाहर जाने के लिए उसी कमरे से होकर जाने लगा जहां पांचों कमांडो आराम कर रहे थे. मुझे देखकर सब मुस्तैद होने लगे. तारिक सबसे पहले खड़ा हुआ. मैंने पूछा, ''खाना खा लिया?'' तारिक ने जवाब दिया, ''जी हां जनाब.''

''चौकीदार से कहो सबके लिए चाय बनाए, मैं बरामदे में बैठ रहा हूं.'' कहकर मैं बाहर निकल गया.

बरामदे में बैठे हुए अभी पांच मिनट ही हुए होंगे. मैंने देखा बारिश होने लगी थी. झुटपुटा घना-गहरा होता जा रहा था. दरिया की अविरण गूंज वातावरण को दूर-दूर तक भेद भरी और आतंकित कर रही थी. बरामदे के दाईं तरफ मैंने तारिक को चुस्त-चौकस खड़े देखा. राइफल कंधे पर कायदे से रखी हुई थी. यह देखकर कि मैं उसे देख रहा हूं, उसने मुंह दूसरी ओर घुमा लिया. वह जाहिर नहीं करना चाहता था कि वह मेरी सुरक्षा के लिए मुस्तैद है. मैंने उसकी तरफ से नजर हटाई और किश्तवाड़ की ओर पर्वतमालाओं को देखने लगा. फिर नजर घूमती-घूमती ठाठरी के उन मकानों के ऊपर जा अटकी, जो एक छोटी पहाड़ी के ऊपर थे.

''साहब.''

मैंने देखा तारिक मेरे पास आ गया था. मुझे लगा कि वह कोई बात करना चाहता है. कुछ और पास आकर वह बोला, ''साहब क्या आप बंबई से आए हैं?''

''हां.''

''साहब मैं आपको एक कहानी सुनाना चाहता हूं, उस कहानी पर खूबसूरत फिल्में बन सकती है. कोई मिलीटेंटों के बारे में नहीं, साहब अपने बारे में, अपने प्यार की कहानी.''

मुझे अजीब लगा, और अच्छा भी. भय और आतंक से भरे उस वातावरण से बाहर निकलने का इससे बढ़िया और कोई तरीका नहीं हो सकता था. मैं उसकी तरफ देखकर मुस्कराया. वह एक लंबा, खूबसूरत नौजवान था. उसके गाल लाल थे. उसकी आंखे थोड़ी-थोड़ी नीली थीं, परंतु छोटी थीं. वह बड़े भोलेपन से कह रहा था,''साहब अगर आप मेरी कहानी बनाएंगे तो मुझे बड़ा फायदा पहुंचेगा.'' मैंने हंसते हुए उससे पूछा, ''किस बात का फायदा पहुंचेगा तुम्हें?'' थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला,''पहले आप मेरी कहानी सुनें.'' उस समय मैं भी कोई शगल चाहता था. ''अच्छा सुनाओ.'' मैंने कहा.

उसने शुरू किया, ''साहब वह बहुत ही खूबसूरत है.''

''कौन?''

''जिसकी कहानी सुनाने लगा हूं. मैं उससे मुहब्बत करता हूं. वह सचमुच बहुत खूबसूरत है.''

''तुम्हारे जैसी?''

उसका चेहरा और भी सुर्ख हो गया. राइफल कंधे से उतारकर उससे दोनों हाथों में ले ली, जैसे कंधा हल्का करना चाहता हो.

''बैठ जाओ.'' मैने दूसरी कुर्सी की तरफ इशारा किया.

''नहीं, मैं बैठूंगा नहीं, मैं ड्यूटी पर हूं जनाब.''

''चलो आगे सुनाओ.''

''साहब वह इतनी खूबसूरत है कि उसे देखकर कोई भी उससे मुहब्बत करने लगे.''

''कहां रहती है वह?''

''हमारा एक ही गांव है.''

''कौन-सा गांव?.

''किश्तवाड़ के पास ही है. उसका बाप और मेरा बाप दोनों दोस्त हैं. हम जब छोटे-छोटे थे, तभी से उन दोनों ने हमारा रिश्ता पक्का कर दिया था. हम दोनों को भी इस बात का एहसास था कि बड़े होकर एक रोज हमारी शादी हो जाएगी.''

''उसका नाम क्या है?''

''शिगुफ्ता.''

मैंने देखा लड़की का नाम लेते हुए उसकी आंखें में, उसके गालों पर, उसके माथे पर एक रोशनी-सी चमकी, प्यार की उस रोशनी में लज्जा भी थी.

''मैं उसे 'शिग्गु' कहकर बुलाता हूं.'' तारिक ने अपनी कहानी जारी रखी, ''बचपन में ही साथ-साथ खेलते हुए हम समझ बैठे थे कि हमारे ये खेल सारी उमर चलते रहेंगे. थोड़े बड़े होकर भी हम गांव में एक साथ घूमने-फिरने में झिझक महसूस नहीं करते थे. फिर जैसे-जैसे बड़े हुए, घर से बाहर मिलना-जुलना बंद हो गया. एक साल पहले तक मैं उनके घर जाकर उससे मिलता था. फिर अचानक ही उसकी मां ने मुझे कह दिया, ''तुम हमारे घर मत आया करो.''

''क्यों, उसने ऐसा क्यों कहा?''

''वह शिग्गु की शादी अपने बड़े भाई के लड़के के साथ करना चाहती है. वह लड़का बड़ा बदनाम है. उसे किसी अच्छे

घर की लड़की नहीं मिल सकती. उसके बाप ने शिगुफ्ता की मां से कहा तो वह मान गई. शिग्गू के मां-बाप उसके एहसानों के नीचे दबे हुए हैं. वह उसे इनकार नहीं कर सकते.''

''वह जब मां से बात करती है, मां को दौरा पड़ जाता है. वह अपना सीना दबाकर चिल्लाना शुरू कर देती है. शिग्गू अपनी मां का तड़पना नहीं देख सकती. वह अपनी मां से बहुत प्यार करती है. अब वह उसके सामने मेरा नाम भी नहीं लेती.''

''बहुत चालाक है उसकी मां.'' मैंने कहा.

''बड़ी बहानेबाज है. नखरे करने में अव्वल. पहले तो मुझे गले लगा-लगाकर मेरा मुंह चूमती रहती थी. अच्छा-अच्छा खिलाती-पिलाती थी मुझे. अब देखते ही नाक चढ़ा लेती है. एक बार मैं उनके घर गया तो उसने साफ-साफ कह दिया, 'शिग्गू की शादी होने वाली है, अब तुम्हारे यहां आने का क्या मतलब है?' ''

''शिगुफ्ता क्या कहती है?''

''वह बेचारी क्या कहेगी. रो-रोकर उसकी आंखें सूजी रहती हैं. कुछ दिनों के लिए हम चोरी-चोरी मिलते रहे. जब उसकी मां को पता चला तो उसे दौरा पड़ गया. वह जमीन पर लोट-पोट होकर चीखें मारने लगी. फिर बेहोशी का नाटक करने लगी. शिग्गू मां को उस हाल में देखकर रोने लगी. उसने मिलना बंद कर दिया. मैंने उनके पिछवाड़े की दीवार फलांगी और खिड़की के रास्ते कूदकर शिग्गू के कमरे में पहुंच गया. दोपहर का समय था और वह सो रही थी. साहब आप यकीन नहीं करेंगे उस समय अपने बिस्तर पर सोई हुई वह एक फूल की तरह लग रही थी. मैं कितनी ही देर तक उसे लंबी-लंबी सांसें लेते हुए देखता रहा. फिर बेकाबू होकर मैंने उसके पांवों पर अपना मुंह रख दिया और रोने लगा. वह हड़बड़ाकर उठ बैठी. मुझे देखकर वह चीखने ही लगी थी कि रुक गई. फिर एकाएक वह मुझसे दूर हट गई. उसने मुझे फौरन वहां से चले जाने के लिए कहा. उसने कहा कि वह अपनी मां का तड़पना नहीं देख सकती. उसका दिल बहुत कमजोर है. उसने मुझे दीवार फांदकर खिड़की के रास्ते आने से भी मना कर दिया. उस दिन के बाद वह जब भी कहीं मिली, मुझसे नहीं बोली. वह मेरी किसी बात का जवाब भी नहीं देती. आप ही बताइए मैं क्या करूं? कैसे जिऊं उसके बगैर?''

अविराम इतना कहने के बाद वह रोने लगा. राइफल पकड़े हुए वह रो रहा था, और मैं बुत बने हुए टकटकी लगाए उसे देख रहा था. उस समय मुझे दरिया की गरजदार आवज भी सुनाई नहीं दे रही थी. मैं भूल गया था कि यह ठाठरी है, मिलीटेंटों की पनाहगाह. झुटपुटे में शामिल खौफ भी कहीं गायब हो चुका था. उस समय मैं उस छह फुट लंबे अति सुंदर, आकर्षक कमांडो को रोते हुए देख रहा था. अपनी रोती हुई आवाज में वह फिर बोल उठा, ''साहब आप मेरे प्यार की कहानी पर फिल्म जरूर बनाएं. शिग्गू टी.वी. पर वह फिल्म जरूर देखेगी. फिल्म देखकर उसे पता चलेगा कि मैं उसे कितना प्यार करता हूं. वह फिर मेरे साथ बोलना शुरू कर देगी. मां को मना लेगी और हम दोनों की शादी हो जाएगी.''

मैं उसकी बात का क्या जवाब देता. मैं चुप था और वह अपनी आंखें पोंछ रहा था. उसी वक्त अंदर से रवींद्र आ गया. सामने रखी कुर्सी पर बैठते हुए बोला, ''बहुत बुरा ख्वाब देखा मैंने, इसलिए नींद खुल गई.''

''क्या ख्वाब?'' मैंने पूछा.

''सर कल हमें उस गांव में नहीं जाना चाहिए, उसी के संबंध में बहुत भयानक ख्वाब देखा है.''

''रवींद्र मुझे पता होता कि तुम इतने डरपोक हो तो मैं तुम्हें कभी अपने साथ न आने देता. तुम तो मेरा हौसला भी पस्त कर रहे हो.''

''साहब आप बिलकुल न घबराएं. हम आपके साथ हैं.'' तारिक बोल उठा. रवींद्र ने नाराजगी से उसकी तरफ देखा. उसी समय जोर-जोर से बारिश होने लगी. तेज हवा भी चलने लगी. रवींद्र ने तारिक से कहा, ''इस बारिश में इतने ऊंचे पहाड़ पर जाना ठीक है?''

''साहब बारिश तो इस वक्त हो रही है, कल सुबह नहीं होगी.''

''तुम कैसे कह सकते हो?'' रवींद्र की आवाज में गुस्सा था.

''आप देख लेना.''

दूसरे दिन सुबह सचमुच बारिश नहीं हो रही थी. मेरी जिद के आगे रवींद्र भी मजबूर था. सब जल्दी-जल्दी आधे-अधूरे तैयार हुए और आठ बजे से पहले रेस्ट हाउस से निकल पड़े. मैं घोड़े पर था, रवींद्र पैदल और पांचों कमांडो हमारे आगे-पीछे राइफलें और मोर्टार थामे मुस्तैदी से चले जा रहे थे. तारिक मेरे घोड़े के साथ ही चिपका हुआ था. वह मुझे कई बार कह चुका था, ''साहब घबराना नहीं, मैं आपके साथ हूं.''

ठाठरी के बाजार से गुजरते हुए मैंने देखा दुकानें तो खुली हैं, मगर वहां ग्राहक कोई नहीं. एक दहशत-सी हवा में घुली हुई थी. मैं अपने ओवरकोट के कॉलरों को अपने सीने पर फैलाने लगा. किसी तरफ से गोली आएगी तो टारगेट तो मैं ही था, घोड़े

पर बैठा हुआ. बाजार से होकर आगे हम बाईं तरफ का पहाड़ चढ़ने लगे. मुश्किल चढ़ाई चढ़ने में माहिर था. देखकर, सोच-समझकर पांव बढ़ा रहा था. घोड़े वाले ने बताया कि इस घोड़े ने सिवाय इस रास्ते के और कोई रास्ता नहीं देखा हुआ. उसकी बात सुनकर मुझे तसल्ली हुई.

''साहब आपने मेरी बात का जवाब नहीं दिया.'' तारिक ने साथ-साथ चलते हुए पूछा.

''कौन सी बात?'' मैंने अपने कंधे पर लटक रहे कैमरे को संभालते हुए कहा.

''वही कि आप मेरी कहानी पर फिल्म कैसे बनाएंगे? फिल्में कैसे बनती हैं? वैसे तो फिल्मों से मेरा कोई लेना-देना नहीं.'' मैं कुछ नहीं बोला. वह मेरे साथ-साथ चलता रहा. चार दूसरे कमांडो एक-दूसरे के दरमियान फासला रखकर चल रहे थे. शायद यह उनकी ट्रेनिंग का हिस्सा था. वे सब चढ़ाई ऐसे चढ़ रहे थे जैसे उड़ रहे हों.

''साहब मैं आपको कुछ और भी सुनाना चाहता हूं.'' तारिक बोला. मुझे महसूस हुआ कि वह हर वक्त शिगुफ्ता के बारे में सोचता रहता है. मैंने कुछ नहीं कहा. वह बोलता रहा, ''हम छोटे थे तो जंगल में जाकर छोटे-छोटे खट्टे अनार तोड़-तोड़कर इकट्ठे करते थे. जी भरकर खाते और एक-दूसरे को खिलाते भी थे. जंगल के बीचों-बीच एक नाला बहता था. एक बार मैंने धक्का देकर शिग्गू को नाले में गिरा दिया. उसे तैरना नहीं आता था. तेज पानी में वह बहती चली गई. मैं घबरा गया. वह पानी में और मैं किनारे पर उसके साथ-साथ दौड़ने लगा. आगे जाकर मैंने भी पानी में छलांग लगा दी. हम दोनों डूबने लगे. आगे एक गूजर ने हम दोनों को पानी से बाहर निकाला.''

''तुमने उसे धक्का क्यों दिया?''

''उसे तंग करने में मुझे मजा आता था. मैं कई बार कांटे चुभो-चुभोकर उसे रुला देता था. तभी तो अब वह मुझे इतना रुला रही है. बदला ले रही है.''

अब हम कुछ समतल रास्ते पर चल रहे थे. नाला पार करके एक गांव के बीच से गुजरने लगे. गलियों में पानी की पाइपों का जाल बिछा हुआ था. घोड़े को संभल-संभलकर पांव बढ़ाने पड़ रहे थे, और मुझे उछालें लग रही थीं. अपने घरों से बाहर आ-आकर कुछ औरतें और बच्चे हैरानी से हमें देख रहे थे. भला आजकल कौन बाहर से वहां आता है. वे लोग जरूर मुझे कोई बड़ा सरकारी अफसर समझ रहे थे. एक बूढ़े आदमी ने मुझे सलाम भी ठोंका.

गांव से निकलते ही एक चश्मा नजर आया. मैं घोड़े से उतरा और पानी पीने लगा. तारिक ने भी पानी पिया और कहने लगा, ''आपने मेरी बात का जवाब नहीं दिया?'' मैंने मुस्कुराकर उसकी तरफ देखा. उसने मेरे बोलने से पहले ही कुछ बोलना शुरू कर दिया, ''जब मैं और शिग्गू थोड़े बड़े हुए, समझिए आठ-नौ बरस के, तो हम जलाने की लकड़ियां लेने के लिए जंगल में एक साथ ही जाते थे. वह एक तरफ गीत गाने बैठ जाती और मैं उसके लिए लकड़ियां चुनता. वह बहुत अच्छा गाती थी. एक दिन हमने दूर एक रीछ को देखा. हम डरकर एक पेड़ के पीछे छुप गए. शिग्गू इतनी भयभीत हो गई कि वह मुझसे लिपट गई. जब रीछ वहां से चला गया तो वह मुझसे अलग होने लगी. लेकिन मैंने उसे नहीं छोड़ा तो वह मुझे धक्का देती हुई बोली, ''छोड़ मुझे, अभी हमारी शादी थोड़े हुई है.''

मैं हंसा. मगर तारिक की आंखें भीगी हुई थीं. शर्मिंदा-सा लग रहा था वह, जैसे उसकी सबसे प्रिय वस्तु किसी ने छीन ली है, वह कांपती हुई आवाज में बोला, ''साहब अगर मेरी उससे शादी नहीं हुई तो बहुत मुश्किल हो जाएगी. मैं उसके बगैर नहीं रह सकता.'' यह कहते हुए वह दूर कहीं गहरी खाईं में देख रहा था. वह बड़बड़ाए जा रहा था, ''मैं उसके बगैर नहीं रह सकता!'' मैं उठा और फिर घोड़े पर बैठ गया. वह भी साथ-साथ चलने लगा. आगे घने जंगल में पहुंच गए हम. यों लगा कि एकदम अंधेरे में आ गए हैं. बादलों ने भी एकदम घेर-सा लिया. पता नहीं लग रहा था कि जंगल में बादल हैं या बादलों में जंगल हैं. मुश्किल यह थी कि चढ़ाई भी चढ़ रहे थे. लेहोटा गांव अब ज्यादा ऊपर नहीं था.

''गांव में जरूर बर्फ पड़ रही होगी!'' तारिक ने कहा. घोड़े वाले ने घोड़े की बागें हाथ में पकड़ रखी थीं. खड़ी चढ़ाई चढ़ते हुए घोड़ा उछल रहा था. उसकी टांगें कांप रही थीं. मैं अपने पैर रकाबों में फंसाए उन्हें पीछे ले जाने की कोशिश कर रहा था, और दोनों हाथों से काठी को आगे से थामकर अपने शरीर का बोझ आगे की तरफ डाल रहा था, उस वक्त पहली बार मुझे खयाल आया कि हम कहां फंस गए हैं. क्या जरूरत थी यहां जाने की? अगर घोड़ा फिसला तो? अचानक मुझे महसूस हुआ कि छोटी-छोटी बर्फ गिरने लगी है. मेरे दिल पर दहशत छाने लगी. तारिक घोड़े के पीछे-पीछे था, क्योंकि साथ-साथ चलने की जगह नहीं थी. वह कहने लगा, ''साहब एक बार मैं और शिग्गू ऐसे ही धुंध से भरे जंगल में गुम हो गए थे. डरकर वह रोने लगी, और बेहोश-सी होने लगी. मैं उसे उठाकर जंगल से बाहर ले गया. वह जब होश

में आई तो...'' मुझे पहली बार तारिक का अपनी कहानी सुनाना अच्छा नहीं लगाा. मुझे लगा उसका दिमागा खराब हो चुका है. उसे यह भी नजर नहीं आता कि हम किस मुसीबत में फंसे हैं, और वह शिगुफ्ता के साथ अपने इश्क के राग अलाप रहा है. कितना जड़बुद्धि है. इधर मुझे तारिक पर गुस्सा आ रहा था और उधर घोड़े ने ऐसी उछाल खाई कि मुझसे संभला न गया, और मैं उस तरफ गिरने लगा जिस तरफ गहरी खाईं थी. घोड़े वाले ने तुरंत मुझे थामा और बचा लिया लेकिन इस उछाल से मेरे कंधे पर जो कैमरा लटक रहा था, वह खाईं की तरफ लुढ़क गया, और थोड़ी दूर जाकर धुंध में कहीं गायब हो गया. मेरे मुंह से हल्की-सी एक चीख निकली, क्योंकि उस कैमरे के बगैर उस गांव में जाने का कोई मतलब नहीं था. वहां की फोटो लेनी बहुत जरूरी थी. मेरी चीख सुनकर सब अपनी-अपनी जगह खड़े हो गए. लेकिन तारिक ने जरा भी देर नहीं की, वह उछलकर कैमरे के पीछे लुढ़कता गया और धुंध में गायब हो गया. अब न कैमरा दिखाई दे रहा था न तारिक. सब आंखें फाड़े उधर देख रहे थे. मेरे लिए सांस लेना मुश्किल हो चुका था. धीरे-धीरे वह धुंध में से बाहर आता दिखाई दिया. दूसरे जवानों ने उसकी सहायता की, और उसे ऊपर खींच लिया. मेरा कैमरा लौटाते हुए वह बोला, ''धुंध में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, आखिर एक झाड़ी में हाथों से टटोलकर निकाला.'' मैंने देखा उसके माथे पर गहरी खरोंच आ गई थी. और थोड़ा लहू रिस रहा था. जगह-जगह से उसकी वर्दी फट गई थी. बालों में कीचड़ चिपक गया था. लेकिन उसके होंठों पर मुस्कान थी, वह जान चुका था कि मैं उसका कितना एहसानमंद हूं.

कोई आध घंटे के बाद चढ़ाई समाप्त हुई और हम लेहोटा गांव पहुंचे. वहां बर्फ पड़ रही थी, मगर थोड़ी देर के बाद ही बंद हो गई. सामने दहशतगर्दी का शिकार गांव था. कोई चिड़िया भी वहां नजर नहीं आ रही थी. बिलकुल वीरान, सुनसान, सात-आठ घर थे, जो अब खंडहर हो चुके थे. उखड़े हुए दरवाजे, टूटी हुई दीवारें, जगह-जगह गोलियों के निशान. अंदर-बाहर बर्फ और बारिश का पानी भरा हुआ. मैंने जल्दी से कैमरा खोला. सब घरो के अंदर-बाहर जाकर फोटो लिए. उस जगह का फोटो भी, जहां मारे जाने वाले पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की सांझी चिता जलाई गई थी. जब मैं कैमरा बंद कर रहा था तब तारिक ने मेरे पास आकर कहा, ''साहब हमारे गांव में भी एक बार ऐसी ही कयामत आई थी. शिग्गू के घर के सामने वाले घर में मिलीटेंटों ने एक रात ऐसा ही हमला किया, और बेतहाशा फायरिंग शुरू कर दी. घर में पांच लोग थे. पांचों मारे गए. उनमें एक चार साल का बच्चा भी था. शिग्गू उसे बहुत प्यार करती थी. उसकी लाश देखकर वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगी. बहुत दिनों तक रोती ही रही. कई दिनों तक उसने खाना भी नहीं खाया. उसकी हालत देखकर मुझे भी रोना आ गया साहब!'' मैंने इशारे से उसे कुछ भी कहने से रोक दिया.

सब की राय थी कि हम ज्यादा देर तक वहां न रुकें. चारों तरफ घना काला जंगल था. कहीं से भी फायरिंग आ सकती थी. फैसला हुआ कि जो नाश्ता हम यहां खाने के लिए लाए थे, उसे भी वापस चलते-चलते खाया जाए. वापसी का सफर शुरू हो गया. तारिक यथावत् मेरे साथ था. ढलान उतरते हुए मेरे लिए बहुत जरूरी था कि मैं दोनों हाथों से घोड़े की काठी का अगला हिस्सा पूरी शक्ति से पकड़े रखूं. इस प्रकार घोड़े पर बैठे-बैठे मेरे लिए कुछ भी खाना असंभव था. एक झरने के पास मैंने घोड़े को रोक लिया. तारिक ने नीचे उतरने में मेरी मदद की. मैंने मुंह-हाथ धोया और एक पत्थर पर बैठकर उबले हुए अण्डे और परांठे खाने लगा. दूसरे सब लोग आगे निकल चुके थे. तारिक अपना नाश्ता शायद पहले ही खा चुका था. मुझे अब कोई जल्दी नहीं थी. काम पूरा हो जाने की तसल्ली थी. और मैं यह सोच रहा था कि इतनी दूर-दराज जगह पर और इतनी ऊंचाई पर दहशत-गर्द कहां से और कैसे पहुंच जाते हैं. और क्यूं इतनी निर्दयता से इतने मासूम लोगों की जानें ले लेते हैं? इस दुःखद काण्ड पर मुझे जो डाक्यूमेंट्री फिल्म बनानी थी उसकी रूपरेखा बनती महसूस होने लगी थी. यह भी प्रश्न उभरने लगा कि इतने भयग्रस्त वातावरण में क्या शूटिंग करना संभव होगा.

''साहब!'' तारिक की आवाज सुनकर मैं अपनी सोच से बाहर आ गया. ''मैं आपको बताना चाहता हूं कि मैं कमांडो क्यों बना? मैं शिगुफ्ता को भूल जाना चाहता हूं. इस काम में हर वक्त खतरा रहता है और हर वक्त होशियार और मुस्तैद रहना पड़ता है. इसीलिए उसे याद करने का मौका ही नहीं मिलता. मेरे घर वाले मुझे यह नौकरी कहां करने देते थे. मैंने बहुत जिद् की, जबरदस्ती की और ट्रेनिंग पर चला गया. मुझे कोई भी रिस्क लेने में बड़ा मजा आता है. जब कभी दहशतगर्दों से मुठभेड़ होती है तो मैं सबसे आगे रहता हूं.''

तारिक की बात सुनकर मैं एकटक उसकी तरफ देखने लगा. वह मुस्कुरा रहा था. मगर उसकी मुस्कुराहट में अपार दर्द की

टीसें थें. वह कभी भी आंसू बहा सकता था. वह अपने आपको धोखा दे रहा था. जिसे भूलने के लिए उसने यह खतरनाक काम अपनाया, उसे एक पल के लिए भी वह नहीं भूला था. मेरे साथ चौबीस घंटों से लगातार उसी की बातें कर रहा था.

उसने फिर कहना शुरू किया, ''साहब यह ए.के.47 राइफल मैं हमेशा अपने पास रखता हूं. रात को सोते समय भी इसे सीने से लगाए रखता हूं. मैंने सोच लिया है, जब मुझे शिगुफ्ता की शादी की खबर मिलेगी तो मैं इसकी नोक अपनी तरफ घुमाकर अपने हाथों से इसका ट्रिगर दबा दूंगा.''

उसकी बात सुनकर मैं कांप उठा. उसकी आंखें बता रही थीं कि वह सच कह रहा है और मेरा दिल कह रहा था कि एक दिन ऐसा ही होगा. बेचैन होकर उसके बाद मैं नाश्ता नहीं कर सका. मैं उठा और घोड़े की तरफ बढ़ गया.

आगे ढलान-ही-ढलान थी. दो-ढाई घंटे में हम ठाठरी पहुंच गए. रवींद्र ने कहा, ''अगर हम इसी वक्त निकल चलें तो रात के बारह-एक बजे तक जम्मू पहुंच सकते हैं. मुझे उसकी बात जंची. कमांडो जवानों से बात की. उन्होंने उसी वक्त डोडा फोन करके अपने ऑफिसर से पूछा, और फिर हमें बताया कि उन्हें आर्डर मिला है वे सब आज रात ठाठरी में ही रहें, लेकिन मैं और रवींद्र अभी जम्मू के लिए रवाना हो सकते हैं. रवींद्र ने तुरंत कार में सामान रखवाना शुरू कर दिया. मैंने कभी कमांडोज से हाथ मिलाया. उनका शुक्रिया अदा किया. तारिक मेरे साथ कार तक आ गया. मैंने उससे कहा, ''तुम्हारी और शिगुफ्ता की कहानी बहुत अच्छी है. मैं उस पर जरूर फिल्म बनाऊंगा.'' मैंने झूठ बोला परंतु वह बहुत खुश हुआ. फिर उसके कहने पर मैंने उसे अपना कार्ड दिया, जिस पर मेरा नाम, पता और टेलीफोन नंबर लिखा हुआ था. मैं जब कार में बैठा तो उसने राइफल को ठीक कंधे पर रखकर पूरे फौजी अंदाज में सैल्यूट किया. मैंने देखा उसके माथे की खरोंच सूख गई थीं. सूखे हुए खून का रंग काला हो गया था.

हमारी कार वहां से चल पड़ी. मोड़ मुड़ने से पहले मैंने पीछे मुड़कर देखा. वह मुस्कुराते हुए बहुत खूबसूरत लग रहा था.

❑❑

दो लघुकथाएं

बुढ़ापे का सहारा

राकेश माहेश्वरी 'काल्पनिक'

गरीबदास शासकीय सेवानिवृत्त एक पेंशनधारी हैं. पत्नी के साथ रहते हैं. बेटे ऊंची नौकरी पाकर अलग रहते हैं, परन्तु गरीबदास जब-तब उनकी तरक्की और सम्पन्नता का बखान करते रहते हैं. तब ऐसा लगता जैसे वह अपने बेटों से ज्यादा सुखी हैं, परन्तु उनका दुःख तब और बढ़ जाता, जब उन्हें याद आता कि बेटे मां-बाप के बुढ़ापे की लाठी होते हैं. उनके बेटे तो उन्हें देखने तक नहीं आते. उनको असली सुख तब मिलता है, जब महीने की पेंशन प्राप्त होती है. वही उनके बुढ़ापे का सहारा है. पेंशन पाकर उनकी आंखों की चमक बढ़ जाती है.

सम्पर्कः गली नं. 7, धनारे कॉलोनी,
नरसिंहुपर (म.प्र.)

दो मिनट

आनन्द कुमार तिवारी

बच्चे को जोर से भूख लगी थी. उसकी मां ने कहा, ''बस दो मिनट रुको बेटा! मैं अभी मैगी तैयार कर देती हूं.''

उन्हें हृदयाघात हुआ. डॉक्टर ने कहा, ''यदि दो मिनट की देर हो जाती तो इनका बचना मुश्किल था.''

अस्पताल में एक एक्सीडेंट केस पहुंचा. डॉक्टर ने कहा, ''यदि मिनट पहले आ जाते तो इनका बचना संभव था.''

सड़क पार करते हुए वह ट्रक से दबकर मर गया. लोगों ने कहा-''यदि दो मिनट रुक जाता तो बच जाता.''

दो मिनट, बस दो मिनट. दो मिनट में विध्वंस और मिनट में जीवन. आखिर लोग कब समझेंगे दो मिनट की शीघ्रता और विलम्ब में अन्तर करना.

संपर्कः तुलसी धाम, 36, चंचल कॉलोनी,
लक्ष्मी नगर के पास, पिपलानी, भोपाल (म.प्र.)
मोः 9827362053

❑❑

बोहनी

गोपाल भट

''**कां**बली!....कांबली!''

क्रिकेट के शोरगुल में मैं आकंठ डूबा हुआ था, इसलिए समझ नहीं आया कि यह क्या माजरा है. कबाब में हड्डी की तरह यहां कोई अचानक टपक पड़ा है. मैं हड़बड़ाते हुए उठा और जाकर दरवाजा खोला.

गेट के उस पार खड़े उस आदमी ने मुझे देखते ही कहा, ''कांबली!...कांबली!'' फिर अपने हाथ में पकड़ा हुआ कंबल उठाकर दिखाया. उसकी पीठ पर एक बड़ी गठरी थी. उसकी वेदना मेरी समझ में आई. पर वह भाषा की ऐसी की तैसी कर रहा था तो मुझसे रहा न गया.

''कांबली नहीं, यह तो कंबल है.''

मैंने ठीक से उच्चारण किया, फिर भी उसने कहा, ''कांबली'' और फिर फाटक खोलकर अंदर फुर्ती से चला आया. वह सीधे चौखट के पास मेरे करीब पहुंच गया. अगर इत्मीनान से मैं दरवाजा खोलकर नहीं झांकता तो वह अपनी गठरी को ढोते हुए कहीं और गया होता. यह चलती आफत को घर बुलाया शायद इसी को कहते हैं.

राजस्थान से कुछ घुमंतू व्यापारियों ने हमारे शहर में आकर पड़ाव डाला था. एक महीने से तरह-तरह के कंबल भारी मात्रा में ट्रकों से उतारे जा रहे थे.

व्यापार जोरों से चल रहा था. जैसे सौदे और बिक्री काफी न हों, वे इस छोटे शहर में यूं घर-घर जाकर लोगों की जान खाने लगे थे. घर के सारे लोग अपने-अपने काम से स्कूल, दफ्तर और बाजार जा चुके थे और मैं इस तरह घर में अकेला रह गया था.

कंधे पर रखे कंबल को खोलकर दिखाते हुए उसने कहा, ''ले लो साहब!'' मैंने अपना सिर नकारात्मक ढंग से हिलाया.

''अच्छा है साहब! ले लो, ले लो.'' उसने फिर से कहा.

''नहीं...नहीं.'' मैंने अपने हाथ से मनाही का संकेत किया. फिर अंदर जाकर कुंडी लगाने ही वाला था कि उस व्यापारी ने एक इंच भी पीछे हटे बिना इत्मीनान से अपनी गठरी के साथ भीतर कदम रखा और पता नहीं हिंदी में वह क्या-क्या बोले जा रहा था. मैं अपनी मातृभाषा कन्नड में झुंझला उठा. मैंने बहुत कहा कि नहीं चाहिए, पर उसने मेरी एक भी न सुनी.

वह अपनी गठरी खोलकर एक-एक कंबल विविध रंगों से भरी रंगोली की तरह आंगन में फैलाने लगा. उसका नाम समझाते हुए कहा, ''अच्छा है, तक्कोळिळ, तक्कोळिळ.'' फिर अपने कुछ कन्नड ज्ञान को प्रकट करने लगा.

मेरी हर एक बात पूरी तरह उसकी समझ में आ रही थी. दरअसल हमारे शहर की जलवायु के लिए कंबल की कोई आवश्यकता नहीं है. चाहे गरमी हो या बरसात...या सरदी...हर पल...हर घड़ी घरों में पंखे चलते हैं.

मेरे हां नहीं कहने पर बहस बहुत देर तक चली. घर में अगर कोई कुत्ता होता तो अब तक ''भों-भों'' करते हुए हमारी संगत करता. उसकी बातों के जोर के सामने मैं टिक नहीं सका. एक कमजोर पल में मुझे कहना पड़ा- ''कितने का?'' गठरी में रखे कंबल ऊपर-नीचे करते हुए उस व्यापारी ने आखिर एक कंबल का चयन मेरे लिए स्वयं ही कर डाला.

''पांच सौ'' कहते हुए उसने कंबल उठाकर दिखाया. पांच सौ! दो-तीन दिन पहले बस में ऐसे ही एक आदमी ने एक ग्रामीण को पकड़कर सौदा किया था और ऐसा ही कंबल सौ रुपये में दिया था, जो मैंने अपनी आंखों से देखा था.

ऐसे लोगों के साथ कोई लेनदेन नहीं करना चाहिए. इसीलिए मैंने कह दिया, ''अभी नहीं, फिर कभी देखेंगे.'' और मैं अपने पांव अंदर की तरफ मोड़कर बैठ गया.

उस व्यापारी में कोई हरकत नजर नहीं आई. वह गठरी से कुछ और कंबल बाहर निकाल रहा था और लेने के लिए जोर डाल रहा था.

''बस करो! कितने में दोगे, यह बताओ और मामला खत्म करो.'' मैंने कहा. अरे, पता नहीं, उसकी बातों में आकर मैंने क्यों हथियार डाल दिये?

कहीं यह भाषा का अंतर तो नहीं? उसने मेरी कन्नड में कही अपनी बातों से मुझे इस तरह बांधकर तो नहीं रख दिया है? वह फिर शुरू हो गया.

''साहब! क्या मैं आपको धोखा दे सकता हूं. मुझे कोई लाभ नहीं चाहिए. जिस भाव में मैंने खरीदा है उसी भाव में बेच रहा हूं. दो सौ दे दीजिए.'' उसने कहा.

कंबल तो अच्छा था. बाजार में इससे सस्ते भाव पर मिलना संभव नहीं था. फिर भी मोलभाव किये बिना कोई भी चीज नहीं खरीदनी चाहिए. इसलिए सौदेबाजी तब तक चलती रही जब तक खींचकर आखिर डेढ़ सौ तक नीचे नहीं आई.

बस में इन कंबलवालों के पेट पर लात मारकर उस ग्रामीण का सौ रुपये फेंककर अन्याय करना मुझे ठीक नहीं लगा. इस बीच

इसने अपना सुख-दुःख विस्तार से बताकर इन्हें बेचने में कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं, इसका ब्यौरा मेरे सामने दयनीय ढंग से प्रस्तुत किया. अन्य प्रांत से हमारे अपने प्रदेश में आकर हमारी चौखट पर आ बैठा, इसलिए मैंने एक कंबल खरीद लिया और पैसों के साथ एक आशीष भी जोड़कर उसको दे दिया.

''मेरी बोहनी अच्छी है. तुम्हारे सारे कंबल बिक जाएंगे.'' मैंने कहा.

वह खुश हो उठा और कहा, ''अच्छा साहब! मैं चलता हूं.''

''आज आपकी ही पहली बोहनी है साहब!'' जाते-जाते उसने एक हंसगीत सुनाया.

घर के सभी लोग जब लौट आये तब उन्होंने कंबल खरीदने के लिए मुझे खरी-खोटी सुनाई.

''जाने भी दो. बेचारा. वह श्रमजीवी जो ठहरा. हम भी रोज-रोज कहां खरीदनेवाले हैं? नहीं ओढ़ेंगे तो क्या हुआ? कंबल कम से कम पांव पोंछने के काम तो आएगा न.''

अगले दिन ठीक समय गेट के बाहर से वैसी ही आवाज सुनाई दी, ''कंबल ले लो...कंबल ले लो.''

''कल खरीद लिया. अब और नहीं चाहिए.'' मैंने कहा.

''जो मन में आए, दे दीजिए. आप जो भी देंगे, उससे हमें खुशी होगी. आपके हाथ की बोहनी बहुत किस्मत वाली है. आपकी बोहनी करने के बाद दो घंटे के अंदर ही सारे के सारे कंबल बिक गये हैं.'' उसने हिन्दी और कन्नड का मिश्रण करते हुए कहा.

वह यहीं पर नहीं रुका. अपनी गठरी में से एक कंबल निकालकर उसने मेरे पांवों के आगे रख दिया. और एक सलाम भी ठोंक दिया. मेरी समझ में नहीं आया कि वह ऐसा क्यों कर रहा है. मैंने पचास का एक नोट उसके हाथ में थमा दिया और घर के लोगों की नजर बचाकर वह कंबल कहीं छिपा दिया.

तीसरे दिन भी इतिहास का दुहराव हुआ. गेट के सामने कंबल के आठ-दस व्यापारियों ने मुझे देखते ही गठरियां नीचे उतार दीं और मुझे सलाम किया.

''बोहनी करो साहब!'' यह कहते हुए उन्होंने वृंदगान प्रारंभ किया.

मैं ताव में आ गया, ''बोहनी-वोहनी कुछ नहीं. चले जाओ.'' मैं चिल्ला उठा. पर वे लोग मेरी बात सुनेंगे तब न!

''आपकी बोहनी बहुत अच्छी है साहब! कल-परसों बहुत सारे कंबल किब गये हैं. यहां इस शहर में हम अब सिर्फ दो ही दिन ठहरने वाले हैं. बाकी सारे कंबल बेचकर चले जाएंगे. आप हमें दस पैसे दे दें, तो भी हमारे लिए बहुत हैं. हम दस लोग हैं. एक-एक कंबल आपको देंगे. कृपा करके स्वीकार कीजिए.'' उस टोली के मुखिया ने कहा.

मेरे गरीब हाथ कितने किस्मत वाले हैं. एक सौ रुपये में मैंने उन दसों व्यापारियों से एक-एक कंबल खरीद लिया. उस समूह में एक उदार मन वाले ने एक कदम आगे बढ़कर मुझे एक और कंबल उपहार में दिया.

तीन सौ में मुझे तेरह कंबल मिल गए. अब मेरे सामने यह समस्या खड़ी हुई थी कि इन्हें कैसे संभालकर रखा जाए. अगले वर्ष ये कंबल व्यापारी मेरे घर के सामने इनका ढेर लगाएंगे तो क्या करना होगा? मेरे जैसे भाग्यशाली हाथों वालों को और कितने व्यापारियों का सामना करना पड़ेगा. पता नहीं. सोचने से ही डर लग रहा है. मेरा दिल बैठा जा रहा है.

❑❑

कविता

लकड़ी का दर्द

राजीव कुमार त्रिगर्ती

बहुत कुछ होगा शास्त्रों में
मुक्ति के सन्दर्भ में
धर्म की विविश मान्यताएं
पाप-पुण्य की अनेकानेक परिभाषाएं
मृत्यु के बाद की विविध धारणाएं
परन्तु यदि वृक्ष लगाना होता
दुनिया का सबसे महत्त्वूपर्ण कार्य
तो अपने जन्मोत्सवों पर न लगाकर
या किसी विशेष उत्सव पर न रोपकर
यदि लगाते अपने पूरे जीवन में
किसी भी दिन कोई एक वृक्ष
तो कम से कम चुका देते कर्ज
उस लकड़ी का
जिसकी तहों में लिपटकर
होना है मुक्त इस देह से!

सम्पर्कः गांव-लंघु, डाकघर- गांधीग्राम,
वाया- बैजनाथ, जिला-कांगड़ा (हि.प्र.)
पिन- 176125
मोः 9418193024

सावधान! बड़े भाई देख रहे हैं

डॉ. कुंवर प्रेमिल

मैंने अपने विद्यार्थी जीवन में एक कहानी पढ़ी थी–'बड़े भाई देख रहे हैं' वह कहानी किसी कम्युनिस्ट देश के किसी बड़े भाई की थी. उनकी मूर्ति (आदमकद से भी बड़ी) नगर के किसी भव्य चौक पर निर्मित थी. बड़ी भावपूर्ण आंखें पर खोजी, उसके नीचे एक बड़ी तख्ती में चेतावनी के साथ लिखा था–'सावधान! बड़े भाई देख रहे हैं.'

जैसा मैंने कहा कि बड़ी खोजी आंखें धारण किए हुए मूर्ति कभी-कभी सजीव हो उठती थी. किसकी मजाल थी जो बड़े भाई की नजरों से बचता... असहमति दर्शाता... कोई खतरनाक मंसूबों को अंजाम देता. किसी के चेहरे का रंग बदला नहीं कि वह बड़े भाई की नजरों (सी.सी.टी.वी कैमरे) में चढ़ा नहीं. नकारात्मकता उन्हें जरा भी पसंद नहीं थी और अवहेलना तो बिल्कुल पसंद नहीं थी. कहते हैं कुछ एक को छोड़कर सभी उनके कद्रदान थे. ज्यादा क्या कहें भैय्या, उनकी मर्जी के बगैर हवा चलती कैसे, पत्ता भी हिलता कैसे, सब उनकी जद में थे. मेरा मित्र मेरी पढ़ी कहानी के सुनने पर बड़ी-बड़ी आंखें झपका रहा था. उसे यह सब अजूबा से कम नहीं लग रहा था. दुनिया-जमाने में ऐसे भी कोई बड़े भाई हो सकते हैं. एकदम हैरतअंगेज... किसी भी कल्पना और किसी भी सच्चाई से एकदम परे. अरे बात ही कुछ ऐसी थी, बड़े भाई के कारण वह देश ऊंचा और ऊंचा उठता चला गया था. आकाश से बातें भी करने लगाा था.

अंतरिक्ष से लेकर पेड़-पौधे, समन्दर सभी इस बात के गवाह थे कि सचमुच कोई एक बड़ा भाई अवश्य ही कभी हुआ रहा होगा. बड़े भाई के रहने पर ही छुटभैय्ये हद में रहते हैं, अपने विचारों से भी वह बड़े हैं. उनके पास एक अनोखा डिसिप्लीन है.

'अनोखा डिसीप्लीन' यार मैं समझा नहीं,

मित्र बोला–'आप समझोगे भी कैसे? इस डिसिप्लीन को बहुत कम लोग पसंद करते हैं न इसलिए?'

'क्या बात करते हो भाई?'

'हां यार, इस डिसिप्लीन से चैन तो मिलता नहीं, बड़े भाई भी हमेशा बैचेन रहते हैं.'

'मसलन'

'मसलन, एक तो स्वयं वह सोते नहीं है... घर के सदस्यों को भी नहीं सोने देते. स्वयं बारह-तेरह घंटे काम करते हैं और घर के लोगों से भी कराते हैं. हमेशा विकास की बातें कर-कर के घर वालों की आरामतलबी को नुकसाना पहुंचाते हैं. कहते हैं कि, अपने देश, समाज, परिवार की सलामती के लिए आंखें मूंदकर सोना खतरनाक है, 'हमेशा जागते रहो' का पाठ सुन-सुनकर घरवाले हलाकान है. सादगी से रहो, विकास करो, व्यर्थ ही तैयारे में उड़-उड़कर देश को नुकसान मत पहुंचाओ.

'अच्छा'

'हां यार, बड़े हैं तो बड़े की तरह घर में ही रहते, जरा कुछ हुआ नहीं कि घर से निकल पड़े. चीन की दीवार हो, पाक एल.ओ.सी., सब पर निगहबानी है. उनकी, आंखें कैमरा है जी. मजाल है कि पल भर के लिए झपक तो जाएं'.

'आश्चर्यजनक है यह तो...'

'हां भैया, उनके पास वशीकरण मंत्र है. वह जो कहते हैं सब मान लेते हैं. उनके हाथों में सबकी कुडंली रहती है. उन्हें देश भक्ति का भूत जो चढ़ा है. मुफ्त का पैसा उन्हें हराम है भाई, घर के सदस्य खुरचन-पानी बिना बहुत परेशान हैं भाई. वह देश को फिर से सोने की चिड़िया बनाने पर तुले हैं.'

'सही कहते हो, सोना तो नगर-सेठों की तिजोरियों में भरा है. वह निकलेगा कैसे? जब नहीं निकलेगा तो सोने की चिड़िया बनेगी कैसे? इससे तो लोग उनके पीछे ही पड़ जायेंगे. अब देखो न ऊपर का पैसा कितना स्वादी होता है. खाना हजम करता है. लोगों के पेट फूलने लगेंगे. हाजमोला की गोलियां ढूंढ़ने बाजार में निकल पड़ेंगे.'

'तुम भी सही फरमाते हो यार, यहां का तो भगवान ही पैसा है, पैसे की दूरी हर्गिज-हर्गिज बर्दाश्त के बाहर है. इसे खपाने के लिए लोग अपनी-अपनी जेबों में तरह-तरह के झूठ-फरेब ले-लेकर घूमते हैं जो है सो.'

'अच्छा, एक बात बताओ, वह घर कहां है जिसमें बड़े भाई रहते हैं, यहां तो आलीशान भवन हैं, आकाश चूमती इमारतें हैं, यहां ऐसे तुम्हारे कहे जैसे घर की कल्पना ही व्यर्थ हैं, 'आदर्श घर' किसी पुराने जमाने की कल्पना जरूर हो सकती है मित्र. यहां न तो किसी गंभीर किस्म के डिसिप्लीन की अवधारणा को बल मिलता है और न उसे कोई पसंद ही करता है.'

'हां, इन बड़े भाई की एक बात मुझे पसंद नहीं आई. वे अपने आपको सबका 'सेवक' कहते हैं.' अरे यहां मंत्री, संत्री, बाबू, चपरासी सब मिलेंगे. सेवक कोई नहीं मिलेगा. हर कोई गले में टाई बांधकर चलना चाहता है. इस देश में किसी सेवक का

होना संदिग्ध है. वास्तविकता से परे है यार. चलो प्रेस रिर्पोटर बनकर उनका इंटरव्यू लेते हैं. अभी आटे-दाल का भाव मालुम हो जायेगा.'

'अरे सुनो, इंटरव्यू के चक्कर में मत पड़ो, बड़े भाई का कहना है कि मीडिया से जरा दूर ही हटकर रहो. मीडिया वाले गड़े मुर्दे उखाड़ने लगते हैं न इसलिए. बड़ी मुश्किल से हमें कोई एक बड़ा भाई मिला है. बड़े भाई यदि देश की तरक्की में जुटे हैं तो, जुटे रहने दो न, हमारी इसमें कौन सी पंजी (पांच पैसे) खर्च हो रहे हैं.'

'हां न, मन तो हमारा भी खूब होता है कि हमारे देश की भी तरक्की हो, कांच की सड़कें हो, गलियां-गलियां बिजली से रौशन हों, कार्यालयों में बिना लिए-दिए समय पर काम हों, दवाइयां असली बिके, नोट नकली न चलें, रंग-बिरंगे तैयारे हों, मैट्रो ट्रेनें हो...'

'अरे बस-बस तू तो यार अपने को अमेरिकी समझने लगाा है क्या? ससुरी यहां सड़क बनी नहीं कि एक साल में बह-बहाकर नदी में, फिर नदी से समुन्दर में जा पहुंचती है. मित्रवर, अमेरिकी सड़कों जैसी दो-चार ही सड़कें यदि मिल जायें तो हम अपना बोरिया-बिस्तर लेकर सोने वहीं पहुंच जाये... खटिया डालें वहीं अपनी और खुर्राटे की नींद सो जायें.'

'यार, अब क्या कहें, बड़े भाई का ही सहारा है हमें अब तो, उन्हें राजयोग है और इस तरह उनसे होता हुआ राजयोग कहीं हमें भी मिल जाए...तो हमारी भी जय-जय हो जाए.'

'सही कहते हो मित्र, काश! ऐसे ज्यादा नहीं तो, एक सैकड़ा ही बड़े भाई मिल जायें हमें तो हमारी सात पीढ़ियों तक के हालात सुधर जाएं. रूस, अमेरिका, चीन जैसे बनकर हमें अपने आपको बड़ा बनाना चाहते हैं. अरे भइया, बड़े की बात बड़े ही पहचानते हैं.'

हमारी भी इच्छा है कि हमारे शहर के चौराहे पर भी बड़े भाई की आदमकद मूर्तियां हो और वे मूर्तियां जब-तब सजीव होकर वहीं से गुरु घंटालों पर नजर रखें, ऐसा घुटना रखें, ताकि लोग डरे और डरकर कहें- सावधान! बड़े भाई देख रहे हैं, अभी घुटना रख देंगे और सब किए कराये पर पानी फेर देंगे.

सम्पर्कः एम.आई.जी-8, विजय नगर,
जबलपुर-482002 (म.प्र.)
मोबाइल- 09301822782

❑❑

लघुकथा

रिश्ते

प्रभात दुबे

रविकांत मोबाइल पर अपने छोटे भाई श्रीकांत से काफी देर तक बात करते करते अचानक जोर से हंसे और उन्होंने मोबाइल को चूम लिया. कमरे में प्रवेश करते हुए पत्नी ने पूछा कि-'किसका फोन था और आप इतने खुश क्यों हो रहे हो?'

शर्मा जी ने कहा-'भोपाल से श्रीकांत का फोन था. वह बता रहा था कि एक महीना पहले सुबह बाथरूम में फिसल कर गिर गया था, जिससे उसकी रीढ़ की हड्डी टूट गई थी. दो ऑपरेशन हुए हैं और वह आज ही अस्पताल से घर लौटा है. वह चाहता है कि मैं उसकी कुछ आर्थिक मदद कर दूं.'

'यह तो बहुत ही दुखद घटना है. इसमें खुश होकर मोबाइल चूमने जैसी क्या बात है?'

शर्मा जी ने कहा-'खुश होने की बात यह है कि यदि हम दोनों भोपाल उस को देखने जाते तो आने जाने में दो-तीन हजार रुपया लग जाता और कम से कम पन्द्रह-बीस हजार रुपये की मदद भी करनी पडती. कार्यालय से पूरे एक सप्ताह का अवकाश भी लेना पड़ता. लेकिन मैंने उसे समझा दिया है कि कार्यालय में एक महीने के लिये ऑडिट पार्टी आई है, इसलिये हम अभी भोपाल नहीं आ पा रहे हैं. जैसे ही समय मिलेगा हम आयेंगे जरूर.'

'क्या सच में ऑडिट पार्टी आई है? आपने तो मुझे बताया ही नहीं?'

'अरे नहीं भाई? कोई ऑडिट पार्टी-वार्टी नही आई है, ऐसा कहना पड़ता है?' झुंझला कर शर्मा जी ने कहा. शर्मा जी और कुछ कहने ही वाले थे कि अचानक उनकी नजर अपने हाथ में लिये मोबाइल पर पड़ी. उन्होंने घबरा कर देखा मोबाइल ऑन था. उन्होंने थरथराते हुए हाथों से मोबाइल कान से लगाते हुए घबरा कर कहा, 'हलो'

दूसरी ओर से छोटे भाई श्रीकांत की एक गहरी दर्द भरी आह सी सुनाई दी और फोन डिसकनेक्ट हो गया.

सम्पर्कः 111, पुष्पांजलि स्कूल के सामने, शक्तिनगर
जबलपुर. (म.प्र.)
मोः 9424310984

❑❑

दो गजलें : असरारुल हक मजाज

मिरी वफा[1] का तिरा लुत्फ भी जवाब नहीं.
मिरे शबाब[2] की कीमत तिरा शबाब नहीं.

ये माहताब[3] नहीं है कि आफताब[4] नहीं,
अभी है हुस्न मगर इश्क का जवाब नहीं.

मिरी निगाह में जलवे हैं जलवे ही जलवे,
यहां हिजाब[5] नहीं है यहां नकाब नहीं.

यहां तो हुस्न का दिल भी है गम से सदपारा[6],
मैं कामयाब नहीं वो भी कामयाब नहीं.

न पूछिये मिरी दुनिया को मेरी दुनिया में,
खुद आफताब भी जर्रा है आफताब नहीं.

सभी हैं मयकदा-ए-दहर[7] में खिरदवाले[8],
कोई खराब नहीं है कोई खराब नहीं.

मजाल किसको मैं समझाऊं, कोई क्या समझे,
कि कामयाब-ए-मोहब्बत भी कामयाब नहीं.

1. निष्ठा, 2. युवावस्था, 3. चन्द्रमा, 4, सूर्य, 5. झिझक, परदा, 6. सौ टुकड़े, 7. संसार का मदिरालय, 8. बुद्धिमान

कमाल-ए-इश्क[1] है दीवाना हो गया हूं मैं.
ये किसके हाथ से दामन छुड़ा रहा हूं मैं.

तुम्हीं तो हो जिसे कहती है नाखुदा[2] दुनिया,
बचा सका तो बचा लो कि डूबता हूं मैं.

ये मेरे इश्क की मजबूरियां, मआजअल्लाह,
तुम्हारा राज तुम्हीं से छुपा रहा हूं मैं.

इस इक हिजाब पे सौ बेहिजाबियां सदके,
जहां से चाहता हूं तुमको देखता हूं मैं.

बताने वाले वहीं पर बताते हैं मंजिल,
हजार बार जहां से गुजर चुका हूं मैं.

कभी ये जो'म[3] कि तू मुझसे छुप नहीं सकता
कभी ये वहम कि खुद भी छुपा हुआ हूं मैं.

मुझे सुने न कोई मस्त-ए-बादा-ए-इशरत[4],
मजाज टूटे हुए दिल की इक सदा हूं मैं.

1. प्रेम का कमाल, 2. मल्लाह, 3. अभिमान, 4. सुख-चैन की मदिरा से उन्मत्त

❑❑

दो गजलें : किशन स्वरूप

दरिया भी कातिल हो जाता.
गर साहिल शामिल हो जाता.

होती उम्र अगर सपनों की,
फिर जीना मुश्किल हो जाता.

वो जल्से में आया तो था,
अच्छा था, शामिल हो जाता.

वक्त अगर थोड़ा रुक जाए,
रस्ता ही मंजिल हो जाता.

मैं गर खुद से ही डर जाऊं,
तो शायद बुजदिल हो जाता.

सीख गलतियों से कुछ लेता,
रोशन मुस्तकबिल हो जाता.

बेहतर हो जाते सब रिश्ते,
काश मुलायम दिल हो जाता.

न दिन अच्छा लगे है रात भी बेकार लगती है.
न जाने क्या हुआ है जिन्दगी दुश्वार लगती है.

लिखा है दर्द चेहरे पर और नाकामी निगाहों में,
हमारी शक्ल हमको रोज का अखबार लगती है.

न जाने कौन सा ये मोड़ आया है कहानी में,
पुरानी जिन्दगी उलझा हुआ किरदार लगती है.

कुछ ऐसे चल रही है नाव दरिया में बहुत दिन से,
न तो इस पार लगती है न ही उस पार लगती है.

करें कुछ भी बड़ा नाकामियों का डर सताता है,
करें कुछ भी नहीं खुद ही अना बेजार लगती है.

अभी वो वक्त बाकी है चलो ये रास्ता बदलें,
सफर की धूप से ये जिन्दगी बेदार लगती है.

पुरानी शक्ल है तो क्यों भला ये आइना बदलें,
अभी बाकी सफर है रहगुजर तैयार लगती है.

सम्पर्कः 108/3, मंगल पांडेय नगर, मेरठ-250004
मोबाइलः 9837003216

❑❑

कविताः सुषमा श्रीवास्तव

सुहागरात

एक विज्ञापन
"चाहिए वधू
अच्छे कुल शील
कॉन्वेन्ट की पढ़ी
स्मार्ट गोरी
मांग कोई नहीं."

उछल पड़े
एक अदद
बेटी के बाप.
मिलाया फोन
बोले,
बेटे के बाप
पता किया नोट,
चल पड़े उसी ओर.

बड़ी सी कोठी
रंग-रंग की बोगन बेलिया,
झबरा कुत्ता
नेमप्लेट
डॉ. अनंत गुप्ता.

वह दो कदम पीछे,
खंखारा,
अपने को संभाला
कॉलबेल को बजाया.

पहने लाइनदार पाजामा
साथ में कुत्ता झबरा
जल्दी ही हुआ नमूदार,
सोचा–
होगा कोई चौकीदार,
अब आमना-सामना
एक शख्स बुजुर्गाना,
कोटरों में
तीव्र भेदी आंखें,
उठती गिरती
झपटती सांसें,
सिर पर दो गमछे!
बगैर कहे ही
बैठ गए
बेटी के बाप.
बोले–
जरा डॉ. साहब को
देते बुलवा–
मैं, मैं ही हूं
डॉ. अनंत गुप्ता.
एम एस सी,
पी एच डी,
वी आर एफ डी
फिर बोले,
बेटी के बाप,
जरा चिरंजीव को
बुलवा देते.
मिले तो आप
बाहर–
वही तो लाया
हमें पसंद नहीं दिखावा.
जी क्षमा कीजिएगा.
बेटी के विवाह के लिए आया
यह रहा फोटो
और यह बायोडॉटा–
उन्होंने हाथ नहीं बढ़ाया
इन्होंने, बढ़ा हाथ पीछे लौटाया.

मैं स्पष्टवादी
कार तो आप देंगे ही...
कार! वह तो...
गले में कुछ अटक गया
वाशिंग मशीन, फ्रिज
वगैरह तो देता है आदमी, आम!
जेवर, सोने के होंगे
या डायमंड, मैं ही बता दूं
मेरे सुपुत्र की पहली
पसंद- डायमंड
लड़की के बाप
उठने में नाकाम
जी-जी यह सब तो...
मैं जानता था–
आप देंगे ही.
फिर तो आप हमारे समधी
बेटी के बाप का
चोक हो गया गला
बदन निस्पंद
मुश्किल था पता लगाना
उन्होंने क्या कहा
हां या ना.

तो मेरी तरफ से
पक्की है बात.
शादी ऐसे
पवित्र पारंपरिक अनुष्ठान में
ऐसा ही होता है
बांध लीजिये गांठ.

"देना"
देने की हैसियत है
नहीं तो करवा देते
भ्रूण हत्या
न लड़की पैदा होती
न होता आज
देने-लेने का मसला.
खैर आपकी कन्या
रहे खुशहाल
देता हूं
यहीं आशीर्वाद!

यही बात है सर्वोपरि
सोचने लगे
बेटी के बाप.

तोरण सजे?
बैंड बजे?
फेरे हुए?
और हुई
नई कार में विदाई.

यह थर्ड ग्रेड सामान
क्या करेगा
मेरा लाल.
''डायमंड सोना तो,
तिजोरी की शोभा!''

रोज एक ही रट
बेटे को नहीं दी
सोने की चेन
मायके से लाओ
सामान, सब कंडम
मायके ले जाओ.
सास ससुर ननद देवर
बहू से बेजार
बहू अपने
जीवन से परेशान.

तो हो गया
चाक-चौबंद फैसला.
सब ने मिलकर
मिट्टी के तेल से
नहलाया फिर,
उठी आग की लपटें.
बहू की चीखें,
सबके ठहाके.

''कि''
लपटों से घिरी
बहू पलटी...
अचानक पति को,
जा लिपटी...

छुड़ाने की बेकार कोशिश
हाथ जले ससुर के,
घिग्घी बंधी सास की,
भागे ननद देवर,
अब बहू शांत
हुआ तो आलिंगन!
लपटों में सही
पति की चीखें भी
धीरे-धीरे,
हो रही थीं शांत.

बुदबुदा रही थी
वह भ्रांत...
''जाते कहां हो,
है जन्म-जन्मांतर का साथ
यही मरण
हमारी सुहागरात!''
और पड़े थे
आंगन में
दो
आलिंगन बद्ध
पिंजर!

संपर्कः 19/1152 'आस्था'
इन्दिरा नगर, लखनऊ (उ. प्र.)
मोः 9536510501

❑

दो गजलें

डॉ. मधुर नज्मी

एक

पुरकशिश दास्तां है फूलों की.
क्या शुगुफ्ता जबा है फूलों की.
बागबां है सितम पे आमादा,
आज मुश्किल में जां है फूलों की.
खार जैसी चुभन है बातों में,
जबकि उसकी दुकां है फूलों की.
मखमली चैन मुझको हासिल है,
सामने कहकशां है फूलों की.
काफिले खुशबुओं के आते हैं,
बात होती है जहां फूलों की.
बेसुकूं क्यूं बहार में भी हो,
जात तो मेहरबां है फूलों की.
पूछ बैठी खजां 'मधुर' मुझसे,
दिलकशी अब कहां है फूलों में.

दो

हम हैं गुजरे बड़ी तबाही से.
दोस्तों की गलत गवाही से.
काम लेते हैं कम निगाही से,
जिनको मतलब है वाहवाही से.
मुल्क की आबरू भी बेचेंगे,
जुड़ गए हैं जो धनउगाही से.
जुल्म ही के ये कारोबारी हैं,
रहम की आस क्या सिपाही से.
धार पानी की काट कर चलना,
ये हुनर हमने सीखा माही से.
तुझको जाना है कितनी दूर अभी,
रास्ते पूछते हैं राही से.
एक जुगनू की चमक कहती है,
रात मंसब है सियाही से.
क्यूं मसीहा का लें 'मधुर' अहसां,
दर्द कम हो गया दुआ ही से.

सम्पर्कः 'काव्यमुखी साहित्य अकादमी',
गोहना-मुहम्मदाबाद, जिला-मऊ-276403
मोः 09369973494

❑

दो गजलेंः अभिनव अरुण

जमीं को लाख जोतो वो कभी शिकवा नहीं करती.
लुटा धन धान अपने नाम एक पौधा नहीं करती.

उसे गिर गिर के उठने का हुनर भी खूब आता है,
दीये की लौ हवा के जोर से टूटा नहीं करती.

तमाशा देखने का शौक है इसको बहुत लेकिन,
ये जागी कौम है सिक्के कभी फेंका नहीं करती.

भला क्यों तुम यहां अहदे वफा की बात करते हो,
तवायफ एक की खातिर कभी मुजरा नहीं करती.

गले मिलना, किसी से खुल के मिलना, उसकी फितरत है,
नदी लेकिन किनारों से कोई वादा नहीं करती.

कभी लोबान की खुशबू को मुट्ठी में लिया तुमने,
इबादत भी बुतों का रास्ता देखा नहीं करती.

मनाने के लिए उसको कई दोनें पहुंचते हैं,
सड़क की कोई पगली रात को फाका नहीं करती.

समझ वालों के पत्थर जब भी उसके पास जाते हैं,
वो पगली खिलखिलाती है कोई शिकवा नहीं करती.

कोई अपना दिखे तो और भी अनजान बनती है,
मुहब्बत में जमाने के लिए किस्सा नहीं करती.

नियति को मानकर गंगा सभी के पाप धोती है,
वो खुद के पाक होने का कोई दावा नहीं करती.

ठगे जाओगे तुम बाजार से वाकिफ नहीं अभिनव,
तुम्हारे सामने वो इसलिए चेहरा नहीं करती.

मेरी ख्वाहिशों का ये कैसा अमल है.
जिधर देखता हूं वही आजकल है.

वही एक चेहरा हरेक कैनवस पर,
किया किसने जादू किया किसने छल है.

धनक जिसको कहती है ये दुनिया सारी,
उन्हीं सूर्ख होंठों की बस इक नकल है.

डिगेगा नहीं पत्थरों से तुम्हारे,
सुनो आज भी कैस जिद पे अटल है.

गले मिल के उर्दू से हिंदी ये बोली,
मुहब्बत जहां है वहीं पर गजल है.

हुई है मुहब्बत मुझे खंडरों से,
मलंगी में मन ये गया अब बदल है.

खजाना लुटाते हैं गुल खुशबुओं का,
जो दीखता नहीं है वही बस असल है.

जमाने पे हंसती हैं आजाद रूहें,
कहां कोई छत है कहां कोई तल है.

मलूकों कबीरों की बानी न समझे,
ये इंसान अब भी बड़ा कम अकल है.

संपर्कः बी-12, शीतल कुंज, लेन-10,
निराला नगर, शिवपुरवा, वाराणसी-221010
मोः 9415678748

❑

दो कविताएं

अर्चना दयाल

1. उगा लिये मन में बबूल

मसल दिये
श्रद्धा के फूल
उगा लिये
मन में बबूल
हमने की
कितनी बड़ी भूल
यादों की दीक्षायें
महंगी प्रतीक्षायें
तोड़ गईं
भ्रम सारे
वास्तविक परीक्षायें
कोहरे में
दुख के हैं
सुख के मस्तूल
हमने की भूल
तन मन से
बुद्ध रहे
मौत के विरुद्ध रहे
शान्ति के
उपासक हम
फिर भी
युद्ध करते रहे
सपनों को
करते रहे
अपने प्रतिकूल
हमने की भूल!

मैं और मेरे गीत

मेरे गीत
मेरी सृष्टि है
इनमें कितने
काव्य शिल्प
एवं
कितनी संस्कारशीलता है
समीक्षक जाने
कितने रुचिकर
और सम्प्रेषणीय हैं

सम्पर्कः अध्यापिका, क्राइस्ट चर्च ब्वायज सीनियर सेकेंडरी स्कूल,
सिविल लाइन्स, जबलपुर-482001

❑❑

विष्णु प्रभाकर एक : दृष्टियां अनेक

डॉ. भावना शुक्ल

हिन्दी साहित्यकार विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून 1912 को मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ. आपने कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, यात्रा वृतांत, जीवनी आदि विधाओं में सृजन किया. 1955 से 1957 तक आकाशवाणी में नाट्य निर्देशक के तौर पर कार्य किया. सन् 2005 में राष्ट्रपति भवन में कथित दुर्व्यवहार के विरोध स्वरूप पद्मभूषण लौटाने की घोषणा की. हिन्दी साहित्य को साहित्य की अक्षय निधि से समुन्नत करने वाले श्री विष्णु प्रभाकर 97 वर्ष की आयु में 11 अप्रैल 2009 को हम सबको अलविदा कर गए. आज वे वास्तव में ऐसे मसीहा हैं जिन्हें साहित्य प्रेमी सदा याद रखेंगे.

हमारे बीच विष्णु प्रभाकर तो एक हैं, पर उनकी दृष्टियां अनेक हैं. हर वो व्यक्ति जो साहित्य प्रेमी है, उन्हें जानता है. उनके व्यक्तित्व में उनके साहित्य में कुछ ऐसी बात है जो साहित्य जगत को प्रभावित करती है. उनकी कुछ दृष्टियों पर मैंने प्रकाश डाला है.

व्यक्ति का प्रभावशाली व्यक्तित्व ही उसकी पहचान होता है और यदि वह अनूठा हो तो क्या बात है.

सरला जगमोहन के शब्दों में...''बचपन में नाम सुना था—विष्णु प्रभाकर. बाद में उनकी छुटपुट कहानियां पढ़ी थीं जो एक युवा पाठक के रूप में मुझे प्रभावित कर गईं. मैं मुंबई से दिल्ली आ गई. फिर क्या मुश्किल थी. प्रभाकर जी दिल्ली में हैं और शाम के वक्त हमेशा उनके कदम कनाटप्लेस में इंडिया काफी हाउस की ओर मुड़ते हैं. और मेरा वहां अक्सर जाना होता रहा है और एक दिन विष्णुजी से मेरा परिचय हो ही गया. वे मितभाषी हैं. स्वयं बोलने की बजाय दूसरों की सुनना ज्यादा पसंद करते हैं.''

विष्णुजी को देखकर ऐसे ही लगता है कि उन्होंने मनुष्य को समभाव और सहानुभूति के साथ देखा है. उनकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़कर भी मन में वही भाव आता है.

विष्णुजी की रचनाएं पढ़कर कभी-कभी अवश्य लगता है कि कहानी-उपन्यासों में विष्णु जी कुछ अधिक ही दिखाई देते हैं. और विभिन्न पात्रों द्वारा स्वयं ही कुछ कह रहे हैं. विशुद्ध साहित्य का झण्डा लहराने वाले को इससे एतराज हो सकता है. लेकिन किसी भी लेखक को लेखन के अपने तरीके अपनाने से रोका भी तो नहीं जा सकता.

उनका कहना है कि पाठक और समीक्षक चाहें तो इन कहानियों के माध्यम से उन्हें मेरा परिचय भी मिल सकता है. उनका विचार है—मान्यता और कर्म के द्वन्द्व के बावजूद अपने को छिपाकर सर्जना करना बहुत कठिन है.

विष्णुजी शरत्जी के व्यक्तित्व के बारे में क्या सोचते हैं, यह तो आवारा मसीहा जीवनी से स्पष्ट हो जाता है. विष्णुजी इस जीवनी में यह बताना चाहते हैं कि शरत् हृदय जीतने में विश्वास करते थे और जो वास्तविक जीवन देखना चाहते हैं, वे शुचिता अशुचिता के चक्कर में नहीं पड़ते. (1)

विष्णु प्रभाकर जैसा व्यक्तित्व साहित्य जगत को मिला, यह हिन्दी साहित्य जगत का बहुत बड़ा सद्भाग्य है.

आवारा मसीहा की ख्याति ने इन्हें विशेष स्थान पर ला खड़ा किया. यह एक सर्जनात्मक प्रस्तुति है. इस कृति में विशेष रूप से शरत के जीवन को बहुत गहराई के साथ प्रस्तुत किया. बताया है कि शरतचंद्र ने अपने साहित्य में वेश्याओं और दुराचारियों को ऊंचा पद दिया और तत्कालीन मूल्यों के आगे प्रश्न चिह्न लगाया. उनका विचार था पुरुष हो या स्त्री गिरकर उठने का रास्ता सबके लिए खुला रहना चाहिए.

यह कहानी कोई अत्युक्ति न होगी कि लगभग सौ कृतियों के सफल लेखक प्रभाकरजी कि ख्याति का एक मात्र आधार केवल आवारा मसीहा को ही माना जाएगा.

प्रभाकरजी के शब्दों में-1959 से 1973 तक लगभग चौदह वर्षों के समर्पण के बाद यह कृति अपना पूर्ण आकार ले सकी है. आवारा मसीहा की सफलता का एक कारण तो रहे स्वयं शरतचंद्र. उस आदमी का जीवन इतना विचित्र है, उसको लोगों ने कभी समझा नहीं. मेरा इतना ही योगदान हो सकता है की मैंने सही शरतचंद्र को समने ला दिया. उनका जीवन

इतना कलरफुल है कि मुझे उसमें बहुत ज्यादा कल्पना करने की जरूरत नहीं थी...मुझे बड़ी खुशी हुई की बंगाल ने उसे अद्‌भुत कहा. शरतचन्द्र की जीवनी लिखकर मुझे मनुष्य को समग्रता में देखने की दृष्टि मिली.

1. प्रभाकर जी के शब्द इतने जीवंत है. वास्तव में शरतचन्द्र को उन्होंने एक मसीहा बनाकर हिन्दी साहित्य में शीर्ष में ला खड़ा किया. यह एक ऐसी सशक्त कृति सामने आयी जिससे प्रभाकर जी की छवि आकाश की ऊंचाइयों को छू गई.

जीवनी इतिहास भी है, साहित्य भी, इसके साथ-साथ वह व्यक्ति विशेष का ऐसा अध्ययन भी है जिसमें ईमानदारी पूर्वक उक्त व्यक्ति के जीवन की प्रधान-अप्रधान घटनाओं को संतुलित एवं जीवन विकास क्रम की दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है, इसीलिए एक मराठी बंधु ने लेखक को सचेत किया था– 'शरत' के भावी चरित्र लेखक को अंत में यही याद रखना होगाा कि वो मनुष्य भले बुरे गुणों से परे नहीं है. हो चाहे जो भी हो, शरत का जीवन कितना विवादास्पद रहा हो, लेखक की अपनी आस्था अपने प्रिय 'आवारा मसीहा' के प्रति निर्विवाद है और इसीलिए प्रत्येक स्थल इतना भावुक और मार्मिक बन पड़ा है. शरत का चरित्र निर्मल आकाश में शरत का चंद्रमा ही सिद्ध हो गया.

यह जीवनी न केवल उक्त व्यक्ति का अपितु तत्कालीन समाज व परिस्थितियों का प्रामाणिक दस्तावेज होती है इसीलिए उसे ऐतिहासिक माना गया है... 'साहित्यिक विधा होते हुए भी यह व्यक्ति विशेष की जीवन गाथा का ऐतिहासिक अध्ययन होती है. इसीलिए विष्णु प्रभाकर ने प्रस्तुत जीवन कथा में शरत के सम्पूर्ण जीवन को आत्मीय शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि यह तत्कालीन समाज का प्रामाणिक दस्तावेज बन गई है. (2)

आवारा मसीहा की सर्जना में लेखक ने शरतचंद्र के प्रति गहरी आस्था, अपनत्व का भाव और सहानुभूति ने भी इस जीवनी कथा में रस का संचार कर दिया है.

विष्णु प्रभाकर की एक और जीवन दृष्टि हमारे समक्ष आती है, उन का 'तट के बंधन' उपन्यास जिसमें मध्यमवर्गीय नारी की व्यथा-कथा महानगरों और कस्बों में कुछ ज्यादा भिन्न नहीं है. कस्बे में अंधविश्वास, आरोपित नैतिकता, आदर्शवादिता तथा सड़े गले संस्कारों छदम जीवन जीने कि विवशता रहती है विष्णु जी ने स्वयं कस्बे में जन्म लिया है, उस मानसिकता को भोगा है. और इन पर गांधी के नारी सुधार आंदोलन का भी प्रभाव पड़ा है. एक और आंतरिक साधना दूसरी ओर परिवेश का आग्रह दोनों ही विष्णु जी को नारी-समस्या को उठाने के लिए प्रेरित करते रहे हैं.

'तट के बंधन' में प्रस्तुत मध्यमवर्गीय नारी की अनेक समस्याओं में विवाह की समस्या प्रमुख है कि हिन्दू समाज के इस वर्ग में नारी-विवाह अनिवार्य है जिसकी अवहेना की कल्पना भी नहीं की जा सकती. जन्म लेते ही कन्या के माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता होने लगती है. विवाह के साथ दहेज की समस्या गंभीर है. कुछ सुशील सुंदर कन्याएं केवल इसीलिए उपयुक्त वर से वंचित रह जाती है, क्योंकि माता-पिता अपेक्षित दहेज नहीं जुटा पाते.

जैसे इस उपन्यास में मालती के विवाह के लिए सभी तरह के वर खोजे गए. हर बार मालती अपने जीवन के महल उठाना शुरू कर देती. कभी वह महल मादक रंगीनियों में खो जाता परंतु दहेज का दानव एक ही प्रहार में उन्हें निर्मल कर देता है और सारे सपने चकना चूर हो जाते हैं. आखिरकार मालती न पढ़ ही पाती है न स्वतंत्र जीवन जीने की कल्पना कर पाती है. असहाय नारी के पास रोने के अलावा कोई चारा भी नहीं है. कहानी में मालती के घर पर सब रोते हैं. जैसे तैसे शादी तय होती है. पिता दहेज के लिए कुछ असत्य वचन कह देते हैं. और दहेज न मिलने पर बारात वापस चली जाती है. उस हंगामें में वधू पक्ष के एक सज्जन ने विरोध करते हुए था कि आप लड़की चाहते है या पैसा? आप विवाह करने आये आये हैं या लूटने. लड़की पर क्या बीत रही है यह कोई नहीं जानता.

दहेज आज के समाज की मूल समस्या है. इस कारण लड़कियां जला दी जाती है या अत्याचार का शिकार होती हैं. या स्वयं अपनी इहलीला समाप्त कर लेती है.

'तट के बंधन' में नारी की एक और समस्या को उजागर किया है. नारी जाति के विवाह की समस्या को कुछ भिन्न प्रकार से उठाया है. कस्बाई परिवेश में रहते हुए गजब की साहसी एवं निडर है. विजातीय संपादक सुनील से कोर्ट में विवाह कर लेती है. बहुत विद्रोह होता है, पर सुनील और राशि दृढ़ हैं. माता-पिताविहीन राशि को उसके भाई-भाभी वेश्या तक कह देते हैं, इसमें नारी अपने संस्कारों पर विजय प्राप्त कर रूढ़ियों को तोड़कर समाज को झकझोर कर रख देती है और वह

सबकी प्रेरणा स्रोत बन जाती है.

उपन्यास में समाज की विभिन्न समस्याओं पर दृष्टिपात किया गया है. एक ओर विधवा नारी के पुनर्विवाह की समस्या को उठाया गया है. वह नारी दो बच्चों की मां है. वह अपने पति के ही मिलता. सभी की उपेक्षा के पात्र बन जाते हैं. अंत में रहमान अली की मृत्यु हो जाती है. नीलम की मां को अपने अस्तित्व की रक्षा और बच्चों के लिए अथक परिश्रम करना पड़ता है तथा समाज की प्रताड़णा का शिकार भी होना पड़ता है. इस कथा में यही बात सामने आती है. पुनर्विवाह को श्रेयस्कर समझा है पर समाज स्वीकृति देता भी कैसे? एक तो विधवा फिर मुसलमान से विवाह, अनर्थ की परंपरा. (4)

उपन्यास में नीलम की करुण कथा भी उभर कर आती है जिसने नवीन समस्या को जन्म दिया है. वह सुंदर है, समाज की ठुकराई है, कितने ही युवक प्यार भरी निगाहों से देखते हैं. लोगों का कहना है कि यह तो वेश्या की बेटी है, किसी ने छेड़ दिया तो कोई अनर्थ तो न हो गया. यह रूप आखिर किस काम आएगा.

कथा आगे चलती है. एक दिन नीलम को डाकू उठाकर ले जाते हैं. उस पर बहुत अत्याचार करते हैं. पुलिस उसे छुड़ाती है. और वह यथार्थ की अग्नि में तपकर कुंदन बनकर निकलती है.

नारी के कई रूपों को प्रभाकर जी ने बड़े ही अद्‍भुत ढंग से प्रस्तुत किया है. जो आज के समाज की समस्या है, इन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से उस यथार्थ के दर्शन कराये हैं.

साहित्यकार की विशिष्ट जीवन दृष्टि ही साहित्य का उद्‍देश्य है जो साहित्य में समाहित होकर सामान्य हो जाती है. जो एक विशेष सामाजिक और परिस्थिति और परिवेश की देन होती है. हमारे दृष्टिकोण से कला की दृष्टि से वही श्रेष्ठ साहित्य कहा जाएगा, जिसका लेखक पाठकों पर सफलता पूर्वक प्रभाव डाल सके.

मेरा मानना है कि व्यक्ति जब युग वर्तमान से जुड़ता है तो सामाजिक समस्याओं की सर्जना होना स्वाभाविक है. और गहरी दृष्टि के साथ-साथ उसका व्यापक होना भी जरूरी है. तभी जटिलता से मुक्ति मिल सकती है. सहज की साधना ही आत्मा की मुक्ति है, जिसके बिना सर्जना का कोई अस्तित्व नहीं.

प्रभाकरजी मानते हैं कि उद्‍देश्य कला में रमा हुआ होना चाहिए, कला की आत्मा बन जाना चाहिए. उस पर थोपा हुआ होना चाहिए. उच्चकोटि का साहित्य वही होगा, जब कला के माध्यम से परमात्मा तक पहुंचेगा. साहित्य उद्‍देश्य के माध्यम से कला तक पहुंचना चाहता है. वहां कला मर जाती है, शोध तथा निरूपण नहीं है. प्रभाकरजी में लोकहित और कला वादी दृष्टिकोणों का समन्वय है. और यह समन्वय उनके सम्पूर्ण नाटकों में जीवन-दर्शन में एक गति है. परिवर्तन है क्योंकि परिवर्तन ही जीवन है.

प्रभाकरजी के नाटकों में दो पीढ़ियों के मूल्यों का संघर्ष देखा जा सकता है. नये और पुराने परिवार, समाज, राजनीति, धर्म आध्यात्म और संस्कृति सभी में निहित है.

पहली दृष्टि में ऊपरी तौर पर देखने से लगता है कि इस स्थिति को यथावत ही छोड़ दिया है और ये किसी निष्कर्ष और समाधान पर नहीं पहुंचे हैं. वे लिखते हैं–

''अनेक श्रोताओं ने मुझे सुझाया कि समस्या तो ठीक है, फिर समाधान भी तो चाहिए. चाहिए तो पर वह दायित्व उस लेखक का ही क्यों है. आप ही ढूंढ़िए उस समाधान को जो अभी तो हाथ में आ-आ कर खिसक ही जाता रहा है.'' (5)

इसी प्रकार ध्वनि, नाटक 'सांप-सीढ़ी' में लेखक ने यह बात कही है कि निर्णय का पता नहीं तो यह भार मुझ पर ही क्यों? आप ही सोचिए नू!

प्रभाकर जी के अन्य नाटकों में ऐसे संकेत मिल सकते हैं, जिससे यह सूचना मिलती है किन्तु नाटककार ने समस्या तो उठाई है, किन्तु समाधान नहीं दिया है. मेरे दृष्टिकोण से यह कारण हो सकता है कि दो पीढ़ियों के संघर्ष में किसी एक पक्ष में निर्णय देना विवादास्पद भी हो सकता है. यदि हम इनके नाटकों का गहराई से अध्ययन करें तो यह विदित होता है कि उन्होंने हर संघर्ष में समाधान का संकेत कर दिया है. कहीं-कहीं समाधान ध्वनित होता है, कहीं गुंजित होता है.

प्रभाकरजी नई पीढ़ी के विषय में पहले ही लिख गये हैं, एक नाटक के एक अंश में सुनना चाहेंगे, अच्छा लगेगा तो सुनिए, कहीं नई पीढ़ी को सही नेतृत्व न मिल जाए. वे हताश और निराश ही बने रहें, और बूढ़े लोग मृत्यु के अन्तिम पगध्वनि सुनने तक ऐयाशी और अधिकार की गंगा में डूबे रहें, लेकिन मैं कहती हूं कि अब वह युग आ रहा है कि अब आदमी के भीतर और बाहर की कोई करतूत छुपी न रहेगी. वह नंगा हो जाएगा और उसकी नंगी लाश पर जन्म लेगी नई सभ्यता. (6)

कहने का मतलब है कि सीमाएं दोनों पीढ़ियों में हैं. नई पीढ़ी परंपरा से कट सकती है. यह भी संभव नहीं, पर परंपरा की हर कड़ी वह नहीं होती जो पहले थी.

प्रभाकरजी की जीवनदृष्टि यथार्थ से जुड़कर आदर्श की ओर ले जाती है. और यही जीवन दर्शन इंसान को इंसान से प्रेम करना सिखाता है. यही उनके नाटकों में जीवन दर्शन है. यही नाट्य कला का उद्देश्य है.

प्रभाकर जी तो एक हैं, पर उनकी दृष्टियों के अनेक रंगों में से कुछ रंगो पर हमने दृष्टिपात किया है. उनका अनूठा व्यक्तित्व आवारा मसीहा की ख्याति को चार चांद लगाकर नारी पात्रों की जिजीविषा से जूझता हुआ नाटकों में जीवन दर्शन के यथार्थ को परिलक्षित करता है.

विष्णु प्रभाकर जी ने अपना संपूर्ण जीवन साहित्य की सेवा में समर्पित कर साहित्य को एक नई दिशा दी है. इति!

संदर्भः

1. विष्णु प्रभाकर–संपादक डॉ. विश्वनाथ मिश्र, डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त

लेख–एक अनूठा व्यक्तित्व–सरला जगमोहन, पृष्ठः 76 से 81

2. विष्णु प्रभाकर–संपादक डॉ. विश्वनाथ मिश्र, डॉ. कृष्णचंद्र मुप्त

आवारा मसीहा, एक सृजनात्मक प्रस्तुति, पृष्ठ 222 से 224

3. विष्णु प्रभाकर–संपादक डॉ. विश्वनाथ मिश्र, डॉ. कृष्णचंद्र गुप्त

मध्यमवर्गीय नारी की व्यथा–कथा, डॉ. महिपाल अग्रवाल, पृष्ठ 316

4. तट के बंधन–पृष्ठ-39

5. विष्णु प्रभाकर 'दो शब्द'–विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण नाटक भाग-टूटते परिवेश, पृष्ठ 3

6. विष्णु प्रभाकर 'दो शब्द'–विष्णु प्रभाकर के संपूर्ण नाटक भाग- टूटते परिवेश, पृष्ठ 47

सम्पर्कः डब्ल्यू जेड हरीसिंह पार्क, मुल्तान नगर,
पश्चिम विहार (पूर्व), नई दिल्ली-110063
मोः 9278720311

❑❑

लेखकों से निवेदन

1. नए-पुराने सभी लेखकों का स्वागत है.
2. रचनाएं मौलिक, अप्रकाशित तथा अप्रसारित होनी आवश्यक हैं. फुलस्केप साइज के कागज पर एक ही तरफ साफ अक्षरों में लिखी हों. टाईप की हुई रचनाओं को प्राथमिकता दी जायेगी.
3. फोटो कॉपी न भेजें, अन्यथा रचना पर विचार नहीं किया जायेगा.
4. मौलिकता का प्रमाण-पत्र अवश्य संलग्न करें.
5. रचनाएं भेजते समय कृपया इस बात का ख्याल रखें कि वह स्तरीय हों तथा समाज, साहित्य एवं संस्कृति से जुड़ी हुई हों.
6. ऐतिहासिक रचनाओं का भी हम स्वागत करते हैं, परन्तु उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता कि जिम्मेदारी पूरी तरह से लेखक की होगी.
7. किसी पर्व-त्योहार आदि पर विशेष लेख कृपया संबंधित तिथि से एक दो माह पूर्व भेजें, ताकि हम उस पर समय रहते विचार कर सकें.
8. अनूदित रचनाएं भेजते समय कृपया मूल लेखक की लिखित अनुमति अवश्य संलग्न करें; वरना उस पर विचार करना संभव न होगा.
9. किसी विशेषांक के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया लिफाफे के ऊपर विशेषांक का नाम अवश्य लिखें.
10. रचनाओं के साथ कृपया डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न न करें. अस्वीकृत रचनाएं वापस करने का कोई प्राविधान नहीं है.
11. रचनाएं ई-मेल पर संलग्नक के तौर पर भी भेज सकते हैं.
12. रचनाओं की स्वीकृति सम्बन्धी अनावश्यक पत्र-व्यवहार या दूरभाष पर बात न करें. स्वीकृत रचनाएं समय पर प्रकाशित की जाती हैं और उसकी एक प्रति लेखक को अवश्य भेजी जाती है.

रचनाएं निम्न पते पर भेजें :-

प्राची मासिक, 7, श्री होम्स, कंचन विहार,
बचपन स्कूल के पास, लामटी, विजय नगर,
जबलपुर-482002
Email :- prachimasik@gmail.com

मेरी नजर में साज

डॉ. दिनेश नंदन तिवारी

तन्हा न अपने आपको, अब पाइये जनाब.
मेरी गजल को साथ लिये जाइये जनाब.

-साज जबलपुरी

ऊपर लिखे गये दो मिसरों के शायर जनाब साज जबलपुरी अब हमारे बीच नहीं हैं ये लिखते हुये कलमुहीं लेखनी अब भी कांप रही है. जी हां वो मनहूस तारीख 18 मई 2013 ही था, नित्यानुसार स्नान और दैनिक पूजन के बाद नाश्ते की टेबल पर इंतजार के क्षणों में मेरे भवन के उद्घाटन के अवसर पर एक पारिवारिक सदस्य अंजलि द्वारा प्रदत्त गिफ्ट के रूप में प्राप्त मेरे ईष्ट सद्गुरु साईनाथ की मनोहारी सीनरी पर नजर पड़ी तो श्रद्धा से माथा झुक गया और प्रार्थना स्वर हृदय से निकले कि आज तो गुरुवार है आपका दिन, कोई अशुभ समाचार नहीं मिले तो इनायत होगी, परन्तु ये प्रार्थना ''कन्सर्टिड औरा रिजेक्टिड'' की तर्ज पर स्वीकार नहीं हुई और मोबाइल पर आई घन्टी के साथ स्क्रीन पर एक नाम चमका. प्रार्थना के लिये उठे हाथ से प्रार्थना अधूरी छोड़कर मोबाइल उठाया तो उस पर प्रसिद्ध साहित्य सेवा और मेरे अच्छे मित्र भाई अशोक श्रीवास्तव ''सिफर'' का नाम पढ़ने में आया, ओ.के. किया तो आवाज गूंजी, ''तिवारी जी नमस्ते, अशोक बोल रहा हूं, दुखद समाचार है! जनाब साज जबलपुरी अब नहीं रहे आज तड़के ही हार्ट अटैक से उनका इंतकाल हो गया है. हम लोग सिविल लाईन से करीब एक बजे निकलेंगे.'' ये सुनते ही मैं हतप्रभ रह गया. ''इन्ना किल्लाहे राजे ऊन'' की प्रेयर के साथ खुद को संयत करते हुये मैंने उन्हें सूचित किया, ''भैय्या मैं तो रायपुर में हूं.'' तो अशोक भाई ने कहा, ''खैर आप अपने अन्य परिचितों को इत्तला कर दीजियेगा.'' और फोन बन्द हो गया.

मुझे साज जबलपुरी का आकर्षक व्यक्तित्व वाला वो चेहरा याद आ गया. सन् 1997 का उत्तरार्ध था, मैंने अपनी दूसरी कहानी ''ईशू का प्यार'' तैयार की थी. दिसम्बर का तीसरा सप्ताह शुरू था, तभी शक्ति भवन में अकाउंट सेक्शन में कार्यरत मेरे एक अन्य मित्र और शायर (आर.के.सराफ)''सराफ सागरी'' मेरे पास आये. चूंकि मैं उनसे मेरी कहानी का जिक्र पूर्व में कर चुका था, अतः बिना किसी भूमिका के उन्होंने मुझे सूचना दी कि साज भाई शक्ति भवन आये हैं, क्रिसमस पर देशबन्धु के लिये अच्छी कहानी की तलाश में हैं, अगर आप उन्हें आपकी कहानी दे दें तो उसके प्रकाशित होने के पूरे पूरे चान्स हैं. ''तब अंधा क्या चाहे दो आंखें'' की तर्ज पर मैंने सराफ सागरी के माध्यम से दूसरे ही दिन उक्त कहानी साज जबलपुरी को सौंप दी, क्योंकि मुझसे उसी दिन मुलाकात के दौरान साज भाई ने मुझे उसके प्रकाशित कराने का पूरा भरोसा जता दिया था. अपने वादे के पक्के साज जबलपुरी ने उक्त कहानी प्रकाशित ही नहीं कराई; बल्कि 26 दिसंबर को देशबंधु की वो प्रति भी मुझे विशेष वाहक से प्रेषित भी की, यानी गौर तलब बात ये थी कि अपनी साहित्य सेवा के साथ वो सभी को प्लेटफार्म देने का विशाल हृदय रखते थे जो आज के समय में बिरले में ही देखने को मिलता है. चूंकि उस वक्त कहानी लेखन के क्षेत्र में मेरा पदार्पण ही था, उस समय के तत्कालीन लघुकथा के सशक्त हस्ताक्षर मेरे साहित्यिक गुरु साईंभक्त स्व. विजयकृष्ण ठाकुर साहब ने भी उस कहानी में आवश्यक सुझाव और संशोधन किये थे, अतः कहानी काफी प्रभावी बन गई थी.

साज जबलपुरी लगभग सभी पुस्तकों के विमोचन समारोहों में पेपर पढ़कर ही अपनी उपस्थिति दर्ज कराते थे, जबकि आज की आपाधापी के इस युग में निमंत्रण देने पर भी कुछ लोग व्यस्तता दर्शाकर उपस्थित नहीं होते हैं, मेरी संपादित पहली पुस्तक ''सत्यनारायण साईंनाथ'' के विमोचन समारोह 24 जुलाई 2011 को जनाब साज जबलपुरी उपस्थित थे, तत्पश्चात् 1 अप्रैल 2012 को उनके 67वें जन्मदिन पर (रामनवमी 2012) उनकी कृति ''किरचें'' के विमोचन समारोह में मुझे भी उपस्थित रहने का सौभाग्य मुझे मिला था. उन्होंने उर्दू अदब के साथ हिन्दी जगत की भी बहुत खिदमत की. आज जनाब साज जबलपुरी हमारे साथ नहीं है ये बात कैसी अजीब लगती है, कैसी विवशता है, पर मानना तो पड़ेगा ही. अल्ला पाक उन्हें जन्नत और सुकून दे, उस पाक रूह को अपने कदमों में रखे. बस यहीं इल्तजा है उनकी दूसरी पुण्यतिथि पर श्रद्धासुमन. इन्ही शब्दों के साथः-

''अजब दस्ते अजल को काम सौंपा है?
मशियत ने कि इक फूल चुनना गुलशन से
और चुपचाप विराने में रख देना.

जनाब साज जबलपुरी ऐसे गुलशन के फूल थे जो सदियों तक उर्दू और हिन्दी जगत में महकते रहेंगे और हमें साहित्य सेवा और सृजन की प्ररणा देते रहेंगे.

इन्सा अल्ला खुदाहाफिज.

सम्पर्कः ससंपादक सत्यनारायण साईनाथ एवं साक्षी सृजनिका, ई-6, साई सबूरी, राम नगर, रामपुर, पो.- विद्युत नगर, जबलपुर-482008 (म.प्र.)

❑❑

किस्सा कहानी और बाल कविताएं

समीक्षकः आशा भाटी

'किस्सा कहानी और बाल कविताएं' डॉ. कुंवर प्रेमिल की दूसरी बाल कृति है. पहली कृति 'प्रदक्षिणा', बाल किशोर उपन्यास के रूप में वर्ष 2011 में प्रकाशित हो चुकी है. यह उनकी चालीस बाल कहानियां तथा एक शिशु गीत के साथ सोलह बाल कविताएं चयनित की गई है.

सुंदर आकर्षक कवर पर एक लड़का एक लड़की का चित्र देखकर किताब को बेहद सुंदर स्वरूप प्रदान किया गया है. साथ ही लड़कियों को लड़कों की होड़ में अन्तर न आंकने की उनकी सोच को यहां पंख मिलते प्रतीत होते हैं. डॉ. गीता गीत ने कहानीकार को 'कलम के सिपाही' कहकर उनकी रचनाधर्मिता का मान बढ़ाया है तो डॉ. विजय तिवारी किसलय ने उन्हें बाल मन के चितेरे कहकर यह कहा है–'किस्सा कहानी और बाल कविताएं लिखकर अपना एक कदम उस ओर बढ़ाया है जो बच्चों का हक है, उन्हें उसकी दरकार है, वे उसके हकदार हैं.'

प्रेमिल जी ने 'किस्सा सियार और जुलाहे' को लिखकर उस किस्सा गोई शैली को याद कराने की कोशिश की है जिसमें दादी/नानी अपने पोता-पोती/नाती-नतिनों को किस्सा कहकर बहलाती थीं. गांव में यह शैली अभी जीवित होने का भ्रम पाले हुए हैं पर शहर की दादी-नानियों को इतनी फुरसत कहां है. रात के समय में घर गृहस्थी से फुर्सत पाकर वह टीवी के सीरियल देखकर समय गुजारती हैं तो बच्चों को उनकी माताएं ए.बी.सी. डी. पढ़ाने -रटानें में लगी रहती हैं. घर-घर की रानी गौरैया आलेख में प्रेमिल जी ने विलुप्त होती गौरैया की जीवन चर्या पर खोजपूर्ण रपट लिखकर उसके प्रति प्रेम और सम्मान दर्शाया है. उन्होंने यह लिखकर–''मैं तो कहता हूं कि शायद गृहणियों ने अपने बच्चे को साज संभालने की कला गौरैया से ही सीखी होगी...'' कमाल कर दिखाया है.

आजकल शिशु गीत पढ़ने को कहां मिलते हैं. प्रेमिल जी ने बच्चों के यह शिशु गीत लिखकर शिशु गीत को याद कराने की एक हल्की सी कोशिश की है. 'पराग' में ऐसे शिशु गीत प्रकाशित होते रहते थे. शिशु गीत है–

लाल-लाल सूरज का गोला
जिसने देखा उसने बोला
सारी दुनिया बदल गई
एक नहीं बदला यह भोला.

भारत दर्शन, फूल, धूप, ऊंट की कूबड़ दिखे पहाड़, ताने सीना चला गधा, एक इंद्रधनुष है चिड़िया का, लटके राम अच्छी बाल कविताएं जिन्हें बच्चे मुखाग्र/याद कर सकते हैं.

बच्चे, बिल्ली, मछलियां-बरसात का एक मुकम्मल दिन जिसे बच्चों ने अपने ढंग से मनाया. किचन में रंगीन मछलियों को आवास दिलाया. खेलमखेला में बिल्ली कूदी और मछलियां बोतलों से बाहर कूदने लगीं. बिल्ली ने हांव कर आंखें मटकाईं और उछलती-मचलती मछलियों को उदरस्थ करने लगी.

चीखा-चीख, उछलमकूदम, शोरगुल के साथ बच्चों की दोपहर बीत गई.... और बिल्ली छत पर डंडा गिल्ली खेलने कूद गई. अच्छा रूपक है.

आवरण पेज के भीतरी पृष्ठों पर कुंवर प्रेमिल जी दिल्ली से जबलपुर पधारे वरिष्ठ साहित्यकार नरेन्द्र कोहली एवं राज्य के पशु पालन मंत्री अजय विश्नोई जी से सम्मान प्राप्त करते हुए तथा अपने पूरे परिवार के साथ एक परिवारिक चित्र में दिखाई देते हैं. आखिरी पृष्ठ पर अपनी चार कृतियों का एक साथ विमोचन कराते हुए पलों को समेटे हुए हैं.

इसी पृष्ठ पर अपनी 9 कृतियों की सूची भी क्रमवार दी गई है. आपका, लेखन के साथ सम्पादन भी उत्कर्ष पर है. प्रतिवर्ष दो लघुकथाओं की (प्रतिनिधि लघुकथाएं एवं ककुभ अनियतकालीन) कृतियों का संपादन भी उनकी लेखन प्रक्रिया के साथ शामिल है. एक सौ चवालीस पृष्ठों की किताब की कीमत एक सौ पचास रुपये कहीं से भी ज्यादा प्रतीत नहीं होती है. इति.

प्रकाशकीय-राकेश भ्रमर ''पठनीय है. इसे बच्चों के लिए चुना जाना चाहिए.''

संपर्कः एम. आई.जी.-8 विजय नगर,
जबलपुर- 482002 (म.प्र.)

पुस्तक का नामः किस्सा कहानी और बाल कविताएं
लेखकः डॉ. कुंवर प्रेमिल
प्रकाशकः प्रज्ञा प्रकाशन, 24, जगदीशपुरम्, निकट त्रिपुला चौराहा, लखनऊ मार्ग, रायबरेली-229001 (उ.प्र.)

❑❑

उत्तर मिल गया

रमेश मनोहरा

एक केन्द्रीय मंत्री ने बयान दिया, ''गरीब आजकल दो सब्जी खाने लगे हैं, इसलिये सब्जियों के भाव बढ़ गये हैं.'' बड़ा बवाल मचा. यह जानने के लिये कि गरीब वास्ततिक रूप में दो सब्जी खा रहे हैं कि नहीं, पत्रकार प्रकाशलाल गरीब मांगीलाल की झोंपड़ी में गये. मांगीलाल झोंपड़ी में ही मिल गया. उन्होंने देखा मांगीलाल का पेट चिपका हुआ है. लगता है कई दिनों से भरपूर खाया नहीं है. पत्रकार प्रकाशलाल ने उदारतापूर्वक पूछा–''अब तो तुम दो-दो सब्जियां खा रहे होगे. बताइये आज कौन सी दो सब्जियां खाईं.''

पहले तो मांगीलाल ने उन्हें घूरा फिर हैरत से पूछा–''गरीब और दो सब्जी मजाक तो नहीं कर रहे हो?''

''मजाक करने की हम पत्रकारों की आदत नहीं है.'' प्रकाशलाल ने धीरज से कहां–''एक केन्द्रीय मंत्री का बयान है. जब से गरीब दो सब्जियां खाने लगे हैं तब से सब्जियां महंगी हो गयी हैं.''

''मंत्रीजी ने हमारे बारे में ऐसा कहा है!''

''हां क्या मैं झूठ बोल रहा हूं. पढ़ो अखबार,''

''अखबार पढ़ना आता तब यह रोना नहीं होता. क्या करूं, मां-बाप ने मुझे नहीं पढ़ाया. अगर पढ़ाया होता तो आज नौकरी करता. यूं मजदूरी थोड़ी न करता.'' कहकर मांगीलाल ने सारा आरोप अपने मां-बाप पर डालकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली.

फिर आगे बोला–''सरकार ने ऐसा कहा कि हम गरीब दो सब्जी खाने लगे हैं. सब्जियों के दाम हम गरीबों के कारण बढ़ने लगे.'' मांगीलाल को अब भी यकीन नहीं हुआ. उसके नसीब में तो एक सब्जी भी नहीं. वह क्रोध से बोला–''झूठ एकदम झूठ! जबकि हमें प्रतिदिन एक सब्जी भी नसीब नहीं होती है. तब दो सब्जी खाने का सवाल हीं नहीं उठता है.''

''मगर मंत्रीजी को पूरा यकीन है–गरीब आजकल दो-दो सब्जी खाने लगे. अतः सब्जियों के दाम बढ़ गये हैं.''

''झूठा एकदम झूठा बयान है मंत्रीजी का- फिर आजकल मंत्रीजी चर्चा में रहने के लिये ऐसे बेहूदा बयान देते रहते हैं. '' जब मांगीलाल ने यह बात कही, तब पत्रकार प्रकाशलाल अचरज में पड़ गये. मांगीलाल की इस सोच पर वह हैरान थे. अतः पत्रकार प्रकाशलाल ने कहा–''आपने तो मंत्रीजी की बात को झूठा साबित कर दिया. आखिर मंत्रीजी झूठ थोड़ी ना बोलते हैं. मतलब जो भी बोलते हैं. सरकारी आंकड़ों के हिसाब से बोलते हैं.''

''मतलब मैं झूठा हूं.'' उखड़ पड़ा मांगीलाल. उसके गुस्से को देख पत्रकार प्रकाशलाल थोड़ा सहम गया. गुस्सा उसकी नाक पर देखकर समझाते हुए बोला–''आप झूठ नहीं बोल सकते. झूठे हैं मंत्रीजी के सरकारी आंकड़े.''

''हां आप सही कहते हैं.'' मांगीलाल ऐसा चहका जैसे उसे कोई कारूं का खजाना मिल गया हो. वे उससे आगे कुछ प्रश्न पूछते तभी मांगीलाल की पत्नी रामकली आकर बोली–''सुणों जी आज बिना सब्जी के रोटी खानी पड़ेगी.''

''क्यों भला?''

''बाजार गई थी, सब्जियों के दाम सुनकर चली आई.''

''क्यों चली आई.'' मांगीलाल गुस्से से उबल पड़ा.

''सब्जियों के दाम सुनकर मेरे पैरों की जमीन खिसक गई, जेब में इतना पैसा भी नहीं था कि एक सब्जी भी खरीद सकूं.''

''सुन लिया पत्रकार साहब!'' मांगीलाल गुस्से से बोले–''अब तो आपके प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा. झूठ मैं बोल रहा हूं कि मंत्रीजी.''

''हां मांगीलाल जी, मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया. '' कहकर पत्रकार प्रकाशलाल उठकर चल दिये.

संपर्कः शीतगली, जावरा-457226
जिला-रतलाम (म.प्र.)
मोबाइल- 9479662215

❑❑

अखिल भारतीय पं. भवानी प्रसाद मिश्र पुरस्कार श्री चन्द्रसेन विराट को

भोपालः श्री चन्द्रसेन विराट का जन्म तीन दिसंबर उन्नीस सौ छत्तीस को इंदौर (म.प्र.) में हुआ. नागरी यांत्रिकी में स्नातक के बाद मध्य प्रदेश शासन, लोक निर्माण विभाग के अधीक्षण यंत्री पद से वर्ष उन्नीस सौ चौरान्वे में आप सेवा निवृत्त हुए. सेवा निवृत्त होने के बाद आपका स्वतंत्र लेखन जारी रहा. आपके समग्र लेखन में चौंतीस पुस्तकें प्रकाशित हैं और आपने सात काव्य संकलनों को संपादित किया है. हिंदी साहित्य में समग्र योगदान के लिए आप प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं द्वारा लगभग दो दर्जन सम्मानों से अलंकृत हैं, जिसमें वर्ष 2012 का राष्ट्रीय भवानी प्रसाद मिश्र पुरस्कार और 2014 का भारतीय वांग्मय पीठ, कोलकाता का साहित्य शिरोमणि मानद सम्मान शामिल है.

'ओ, गीत के गरुण!' गीत संग्रह के माध्यम से श्री चन्द्रसेन विराट ने भाव, भाषा, विचार एवं शिल्प की दृष्टि से गीत की अवधारणा को राष्ट्रीय मंचों के माध्यम से स्थापित किया है. आप बेहद प्रासंगिक और स्पष्ट विचारों की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए भीड़ से अलग एक ऐसे समर्थ गीतकार हैं, जिन्हें गीत-विधा को सिंचित और पल्लवित करने में महारथ हासिल है. साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद् श्री चन्द्रसेन विराट को वर्ष 2012 में प्रकाशित कविता संग्रह 'ओ!गीत के गरुण!' के लिए 'अखिल भारतीय पं. भवानी प्रसाद मिश्र पुरस्कार' से सादर अलंकृत करते हुए गौरव का अनुभव करती है.

प्रस्तुतिः चन्द्रेसन विराट, इंदौर

कवि सम्मेलन व सम्मान समारोह

मीरजापुरः नगर के बरियाघाट स्थित चित्रगुप्त मंदिर परिसर में होली मिलन समारोह के तहत कवि गोष्ठी का आयोजन किया गया. इसमें कवियों ने अपनी रचनओं से फागुनी बयार बहाई. कवि भोलानाथ कुशवाहा ने पढ़ा- 'फलसफा ये कि फासला बढ़ता गया, हमने की मोहब्बत उनपे नशा चढ़ता गया.'' केदारनाथ सविता ने सुनाया- ''जी चाहता है तोड़ दूं दिल का आईना, मगर डरता हूं उसमें तुम्हारा चेहरा छुपा न हो.'' इसी तरह प्रभुनारायन श्रीवास्तव, वृजदेव पांडेय, प्रमोद कुमार सुमन, भवेश चंद्र जायसवाल आदि ने भी अपनी कविताएं सुनाकर सबको भांग के नशे में सराबोर कर दिया. गोष्ठी का संचालन गोपाल कृष्ण सिन्हा शेष ने किया.

प्रस्तुतिः केदारनाथ 'सविता', मीरजापुर

अखिल भारतीय हिन्दी सेवा समिति मध्य प्रदेश राष्ट्रीय अलंकरण एवं कवि सम्मेलन

जबलपुरः हिन्दी सेवा समिति के तत्वावधान में राष्ट्रीय अलंकरण एवं कवि सम्मेलन विगत दिवस रानी दुर्गावती संग्रहालय जबलपुर में आचार्य हरिशंकर दुबे की अध्यक्षता तथा डॉ. राजकुमार तिवारी सुमित्र के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ. (प्रो.) शरदनारायण खरे, मंडला व सुश्री वनश्री कुर्वेती, कटनी के विशिष्ट आतिथ्य में सर्वश्री एस. बी. मुरकुटे, कर्नाटक (राष्ट्रभाषा) हृदयेश सुजानपुरी, बरेली (संपादक रत्न), रजत कुमार, बरेली (समाज रत्न), डॉ. शरदनारायण खरे, मंडला (काव्य विभूषण), डॉ. आशारानी, जबलपुर (साहित्य शिरोमणि), गोपीनाथ कालभोर, खंडवा (साहित्य शिरोमणि), प्रभुलाल चौधरी, उज्जैन (साहित्य शिरोमणि), कमला गीते, खंडवा (साहित्य रत्न), श्रीमती कमला नगरिया, गाडरवारा (साहित्य रत्न), देवेन्द्र कुमार तिवारी 'रत्नेश', जबलपुर (साहित्य रत्न), कालीदास ताम्रकार, जबलपुर (साहित्य रत्न), रमाकांत पाठक, सिहोरा (काव्य रत्न), आर. के. गौतम, कटनी (काव्य रत्न), द्वारका प्रसाद चौधरी, कटनी (शिक्षा रत्न), डॉ. सलमा जमाल, जबलपुर (बाल साहित्यकार), सुश्री वनश्री कुर्वेती, कटनी (नारी गौरव सम्मान) आदि अलंकरण प्रदान किये गये. तत्पश्चात् एक कवि सम्मेलन भी आयोजित किया गया.

प्रस्तुतिः कालीदास ताम्रकार, जबलपुर

डॉ. दिनेश नंदन तिवारी को 'विद्यासागर' की उपाधि

जबलपुरः प्राची के सम्मानित सदस्य, हिन्दी सेवी, समीक्षक, लघुकथाकार, कहानीकार एवं कवि डॉ. दिनेश नंदन तिवारी को उनकी सुदीर्घ हिन्दी सेवा, सारस्वत साधना, महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों, शैक्षिक प्रदेयों, महनीय शोधकार्यों तथा राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय

प्रतिष्ठा के आधार पर गिता दिनों विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, गांधीनगर, ईशीपुर, भागलपुर (बिहार) द्वारा उज्जैन में आयोजित वार्षिक सम्मेलन में 'विद्यासागर' की उपाधि से अलंकृत किया गया. डॉ. दिनेश नंदन तिवारी की इस उपलब्धि पर प्राची परिवार उनके उज्जवल भविष्य की कामना करता है.

प्रस्तुतिः डॉ. दिनेश नंदन तिवारी, जबलपुर

अखिल भारतीय बाल-साहित्य पुरस्कारों के लिए प्रविष्ठियां आमंत्रित

चित्तौड़गढ़ः अखिल भारतीय स्तर पर प्रदान किये जाने वाले बाल साहित्य पुरस्कारों हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित की जाती है.

अ.भा. स्तर पर राष्ट्र कवि पं. सोहनलाल द्विवेदी बाल साहित्य पुरस्कार, 2015 के लिए बाल साहित्य की किसी भी विधा की हिन्दी भाषा की पुस्तकें विचारार्थ भेजी जा सकेगी. पुरस्कार राशि इक्कीस हजार रूपये मात्र है. यह पुरस्कार अब तक डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, डॉ. अजय जन्मेजय, डॉ. आनंद प्रकाश त्रिपाठी, श्री गोविन्द शर्मा, श्री पुष्कर द्विवेदी, श्री संजीव जायसवाल, श्री घमण्डी लाल अग्रवाल एवम् डॉ. कृष्ण कुमार आशु को प्रदान किया जा चुका है.

अ.भा. स्तर पर ही 'युवा बाल साहित्यकार सम्मान' एवम् 'वरिष्ठ बाल साहिव्यकार सम्मान 2015' के लिए भी लेखकों से उपलब्धियों का विवरण आमंत्रित किया जाता है. इन दोनों सम्मान की राशि पांच हजार रुपये (प्रत्येक) है.

यह जानकारी देते हुए पुरस्कारों के संस्थापक राजकुमार जैन 'राजन' ने बताया कि 'चन्द्रसिंह बिरकाली राजस्थानी बाल साहित्य पुरस्कार 2015 हेतु लेखकों से राजस्थानी बाल साहित्य की कृतियां आमंत्रित की जाती है. इसकी पुरस्कार राशि पांच हजार रुपये मात्र है.

इस वर्ष से बाल साहित्य के चित्रकारों को भी सम्मानित करने का निश्चय किया गया है जिसकी सम्मान राशि दो हजार पांच सौ रुपये नकद है.

प्रविष्टि भेजने के लिए किसी प्रकार का शुल्क नहीं है. सम्मानित रचनाकारों को सम्मान राशि, प्रतीक चिन्ह, श्रीफल, प्रशस्ति-पत्र भेंट कर, शाल ओढ़ाकर एक भव्य समारोह में सम्मानित किया जाएगा.

20 नवम्बर 2015 के बाद प्राप्त किसी भी प्रविष्टि पर विचार नहीं किया जाएगा. राजकुमार जैन 'राजन', चित्रा प्रकाशन, आकोला-312205, (चित्तौडगढ) राज. के पते पर आवेदन पत्र व नियमावली जवाबी लिफाफा भेजकर ही मंगवाई जा सकती है.

प्रस्तुतिः राजकुमार जैन 'राजन', आकोला (राजस्थान)

लेखकों से विनम्र निवेदन

प्राची के प्रत्येक अंक में लेखकों के लिए रचना भेजने-संबंधी निर्देश दिए जाते हैं, इसके बावजूद लेखक निर्देशों का पालन नहीं करते हैं. कृपया रचना भेजते समय निम्न बातों का ध्यान रखेंगे तो हमें उन पर विचार करने में सुविधा होगीः-

1. रचना कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया छोड़कर साफ लिपि में लिखी हुई हो या टाइप की हुई हो. पंक्तियों के बीच में भी पर्याप्त स्थान छोड़ें तो संपादन में सुविधा होगी.

2. फोटो प्रतिलिपि पर कोई विचार नहीं किया जाएगा.

3. ईमेल से रचना भेजते समय कृपया उसमें आवश्यक सुधार कर लें. रचना केवल कृतिदेव 010 या कुंडली फॉन्ट में ही भेजें, अन्यथा उस पर विचार नहीं किया जाएगा.

4. कृपया पूर्व प्रकाशित रचना न भेजें.

5. रचना की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रख लें, क्योंकि रचना वापस करने का कोई प्रावधान नहीं है.

6. आपका सहयोग हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है. इसे बनाए रखें.

-सम्पादक

अवधनारायण मुद्गल का निधन

नई दिल्लीः सुप्रसिद्ध कथाकार अवध नारायण मुद्गल का बुधवार 15, अप्रैल को अचानक निधन हो गया. वह लम्बे समय से बिमार चल रहे थे. वह 82 वर्ष के थे. उनका जन्म 28,फरवरी 1933 को हुआ था. बड़ी संख्या में साहित्यकारों ने उनके अंतिम दर्शन किए.

मुद्गलजी करीब 10 वर्षों तक सारिका के संपादक रहे. इसके अलावा उन्होंने पराग और वामा पत्रिकार का भी सम्पादन किया था. मुद्गल जी विशेष रूप से कथाकार रहे हैं. वे अपनी कहानियों को लेकर काफी चर्चित रहे हैं. 'कबंध' उनकी काफी चर्चित पुस्तक रही. अमृतलाल नागर, यशपाल जी के साथ काफी समय तक लखनऊ में रहे. कमलेश्वर के भी सहयोगी रहे.

मुद्गलजी ने हिन्दी साहित्य को अमूल्य निधि दी है, जिसके कारण वे हमेशा याद रखे जाएंगे. मुद्गल जी अपने परिवार में अपनी पत्नी चित्रा मुद्गल तथा पुत्र छोड़ गए. ईश्वर यह दुःख सहने की शक्ति उनको प्रदान करे. प्राची परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि!

डॉ. भावना शुक्ल, नई दिल्ली

पत्र-पत्रिकाएं

1. हरिगंधा (मासिक)
संपादक- डॉ. श्यामसखा 'श्याम'
पता- निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी
अकादमी भवन पी-16,
सेक्टर-14,पंचकूला-934113
मूल्य- ₹15

2. अदबी दहलीज (त्रैमासिक)
संपादक- रंजन 'आज़र'
पता-''अदबी दहलीज'' नियर पोस्ट
आफिस,सरायमीर,आज़मगढ़
पिन कोड- 276305 उत्तर प्रदेश
मूल्य- ₹20

3. रंगअभियान (त्रैमासिक)
संपादक- डॉ. अनिल पतंग
पता- पोस्ट बॉक्स नं.-10,प्रधान डाकघर
मूल्य- ₹50

4. अमृतधारा (मासिक)
संपादक- नील-कमल
पता- अमृत-धारा, 613/10 स्टेट बैंक रोड,
कैथल (पंजाब)
मूल्य- ₹15

5. लघुकथा अभिव्यक्ति (त्रैमासिक)
संपादक- डॉ. मोह. मुइनुदीन 'अतहर'
पता- 1308, अजीजगंज पसियाना, टैगोर
वार्ड, आर. के. टेण्ट हाऊस, जबलपुर-
482002
मूल्य- ₹25

6. रिसाला, ए-इंसानियत (त्रैमासिक)
संपादक- एहतेशाम वाजिद 'आजाद'
पता- 4,आमवाली मस्जिद रोड, जहांगीराबाद,
भोपाल (म.प्र.) 462008
मूल्य- ₹30

7. कलमपुत्र (मासिक)
संपादक- चरणसिंह स्वामी
पता- 481/2,न्यू मुलतान नगर, भेला रोड,
मेरठ (उ.प्र.)
मूल्य- ₹25

8. सरस्वती सुमन (मासिक)
संपादक- (श्रीमति) नेहाक्रांति सिंह, कुमार
विक्रमादित्य सिंह
पता-'सारस्वतम'1, छिब्बरमार्ग, (आर
नगर),देहरादून-248001
मूल्य- ₹20

पुस्तकें

1. सुबह होने वाली है (काव्य संग्रह)
संपादक- शिवकुमार दूबे
पता- अयन प्रकाशन
1/20, महरौली, नई दिल्ली-110030
मूल्य- ₹200

2. अजनबी रिश्तों का पार्क (कहानी संग्रह)
संपादक- अनुपम श्रीवास्तव ''विरुपम''
पता- संकरा पब्लिकेशन्स, 1923, सायली
वालों का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर
मूल्य- ₹190

3. गिरहें (लघुकथा संग्रह)
संपादक- डॉ. चंद्रा सायता
पता- 33, बक्षी गली, राजबाड़ा, इन्दौर-
452004
मूल्य- ₹125

4. दीवान-ए-मयंक (गज़ल संग्रह)
संपादक- डॉ.के.के. सिंह 'मयंक' अकबराबादी
पता- 'शेरी' अकादमी, भोपाल 4,आमवाली
मस्जिद रोड,जहांगीरबाद, भोपाल-462008
मूल्य- बिना जिल्दः ₹150
सजिल्दः ₹200

प्रज्ञा प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

काव्य

1. हवाओं के शहर में (गजल संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹100
2. जंगल बबूलों के (गजल संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹100
3. रेत का दरिया (गजल संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹100
4. सबरंग-हरसंग (गीत संग्रह)	:	अंशलाल पन्द्रे	₹600
5. दोहा-मंजरी (दोहा संग्रह)	:	सनातन कुमार वाजपेयी	₹150
6. तरन्नुम (गजल संग्रह)	:	मोहन लोधिया	₹150
7. सबमें सबका अंश (गीत संग्रह)	:	अंशलाल पन्द्रे	₹500
8. संवेदनाओं के स्वर (कविता संग्रह)	:	मनोज शुक्ल 'मनोज' ₹150	
9. कुछ मन की (कविता संग्रह)	:	डॉ. आशा रानी	₹100
10. प्राची की ओर (गजल संग्रह)	:	सं. राकेश भ्रमर	₹100
11. अम्मा क्यों रोई	:	राकेश भ्रमर	₹400 (सजिल्द)
			₹200 (पेपरबैक)
12. शबनबी धूप (गजल संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹400 (सजिल्द)
			₹200 (पेपरबैक)

उपन्यास

1. उस गली में	:	राकेश भ्रमर	₹ 60
2. डाल के पंछी	:	राकेश भ्रमर	₹100
3. ओस में भीगी लड़की	:	राकेश भ्रमर	₹300 (सजिल्द)
			₹150 (पेपरबैक)
4. बहू बेटा	:	डॉ. मोह. मुइनुद्दीन 'अतहर'	₹100

कहानी संग्रह

1. अब और नहीं	:	राकेश भ्रमर	₹ 50
2. सांप तथा अन्य कहानियां	:	राकेश भ्रमर	₹200
3. प्रश्न अभी शेष है	:	राकेश भ्रमर	₹100
4. आग बुझने तक (अयन प्रकाशन)	:	राकेश भ्रमर	₹400
5. जामुन का पेड़ (लघुकथा संग्रह)	:	डॉ. गीता गीत	₹150
6. झूठ की चटनी (व्यंग्य संग्रह)	:	सनातन कुमार वाजपेयी	₹100
7. कुंवर प्रेमिल की इकसठ लघुकथाएं	:	डॉ. कुंवर प्रेमिल	₹100
8. मरी हुई मछली	:	राकेश भ्रमर	₹100
9. सइयां गाड़ीवान	:	ब्रह्मादीन 'बन्धु'	₹100
10. ये तो कहना ही था	:	डॉ. आशा रानी	₹100
11. किस्सा कहानी और बाल कविताएं	:	डॉ. कुवर प्रेमिल	₹100
12. उसके आंसू (लघुकथा संग्रह)	:	राकेश भ्रमर	₹200

अन्य

1. समकालीन हिन्दी कविता में सामान्यजन	:	डॉ. शोभा सिन्हा	₹300